M.A-Political Science

Semester - 4th

Paper - Theory and Practice of Diplomacy

Unit -I

सम्मेलन राजनय [CONFERENCE DIPLOMACY]

-**सम्मेलन राजनय का अर्थ** (Meaning of Conference Diplomacy)- 'सम्मेलन राजनय' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1920 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री लायर्ड जार्ज के मन्त्रीमंडल के सदस्य **लॉर्ड हैन्की (Lord Hanky)** द्वारा अपने भाषण में किया गया। सम्मेलन राजनय को बहुपक्षीय राजनय कहा जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यह अनुमान किया जाने लगा कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनयिक कार्य-पद्धति गोल-मेज सभाओं द्वारा सम्पन्न की जाए। (लॉर्ड हैंकी के विचारानुसार प्रथम विश्वयुद्ध के बाद महाशक्तियों के मन्त्रियों के बीच प्रत्यक्ष वार्ता प्रारम्भ हुई जो आज न केवल प्रमुख शक्तियों के बीच है बल्कि छोटे राज्यों के बीच भी उसी प्रकार प्रचलित है।

सम्मेलन राजनय में राजनय राजनयिकों के साधारण माध्यम द्वारा नहीं चलाया जाता बल्कि उसके स्थान पर सम्मेलन द्वारा सहमति प्राप्त की जाती है। ऐसा सम्मेलन प्रतिनिधियों के स्तर पर हो सकता है, विदेश मन्त्रियों के स्तर पर या राज्याध्यक्षों के स्तर पर भी हो सकता है। संयुक्त राष्ट्र ऐसे सम्मेलनों के लिए विश्व मंच है। **अरबी मोबबत** के शब्दों में- "राजनय युद्ध को रोकने, सीमित करने वाले अथवा उनका अन्त करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण है।" **निकलसन** के शब्दों में, "राजनय, सन्धिवार्ता द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का व्यवस्थापन है।" जब यह (सन्धिवार्ता व्यक्तिगत रूप में न होकर सामूहिक रूप से की जाती है, तो उसे सम्मेलनीय राजनय कहते हैं।

सम्मेलन राजनय का विकास (The Historical Development of Conference Diplomacy)-सम्मेलनीय राजनय का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी में हो चुका था। नेपोलियन बोनापार्ट ने यूरोप की व्यवस्था को अस्त-व्यस्त बना दिया था। उसको हराने के लिए यूरोप की समस्त शक्तियां संगठित हो चुकी थीं। 1815 में वाटरलू के मैदान में नेपोलियन इन शक्तियों द्वारा हरा दिया गया। वाटरलू की बड़ी लड़ाई में नेपोलियन की पराजय ने युद्ध को समाप्त कर दिया। फ्रांस और यूरोप के अन्य देशों अर्थात् इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, रूस तथा प्रशिया के बीच की शान्ति की शर्तें वीयाना सम्मेलन द्वारा तय की गई। इस प्रकार से यूरोप की पुनर्व्यवस्था करने के लिए पहले वियाना तथा फिर पैरिस में यूरोपीय शक्तियों के राजनयज्ञों का सम्मेलन हुआ। क्रीमियन युद्ध 1853 से 1856 तक चलता रहा। अन्त में रूस को युद्ध समाप्ति के लिए विवश होना पड़ा। रूस, पैरिस सम्मेलन में टर्की और बालकन्स के साथ शान्ति समझौते के लिए बातचीत करने हेतु सहमत हो गया। तभी क्रीमियन युद्ध में विजयी देशों ने पेरिस सम्मेलन का इस आशय के लिए प्रयुक्त किया कि रूस, टर्की और बालकन्स में अपना विस्तार न कर सके। और टर्की के क्षेत्रीय स्थापियत्व को मान्यता दे दी। इसके बाद यूरोप कन्सर्ट बना जिसमें उस समय की महान् शक्तियों ने भाग लिया। यह शक्तियों समय-समय पर सम्मेलन करती रहती थीं और यूरोप के राज्यों का झगड़ा निपटाती रहती थीं। यह कन्सर्ट यद्यपि शीघ्र टूट गया फिर भी यह बात सिद्ध हो गई कि युद्ध की समाप्ति करने के लिए सम्मेलनीय राजनय एक सफल प्रयास है।

बर्लिन सम्मेलन (1878 में हुआ। टर्की छिन्न-भिन्न हो गया और रूस के सम्मान को भी धक्का लगा क्योंकि टर्की राज्य के टूटने से कई स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गए। रूस, बाकन तथा टर्की राज्यों के विस्तार को रोकने की दृष्टि से पाश्चात्य शक्तियों के लिए बर्लिन सम्मेलन सफल सिद्ध हुआ।) और 1907 में हेग सम्मेलन हुआ। (सम्मेलन में 44 देशों ने भाग लिया। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए गए। इनमें युद्ध सम्बन्धी व्यवहार और गैर लड़ाकू व्यक्तियों तथायुद्ध बन्दियों से किए जाने वाले व्यवहार सम्बन्धी प्रस्ताव शामिल थे। लार्ड हैनके ने अपनी पुस्तक 'सम्मेलनीय राजनय (Diplomacy by Conference) में कहा है- "सम्प्रभु तथा सरकारों के मुखिया आमतौर से जब उत्सव में सम्मेलन के लिए जाते थे तब उनके साथ विदेश मन्त्री भी जाते ये। इस सुअवसर पर महत्त्वपूर्ण राजनयिक वार्ता होती थी।"

1918 के पश्चात् जिस तीव्र गति से सम्मेलनीय का प्रयोग प्रचलित हुआ उसने राजनय के इतिहास में एक नवीन घटना का सृजन किया। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् राजनीतिक समस्याओं तथा परिस्थितियों में बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन हुआ जिसका प्रभाव राजनय पर भी पड़ा और उसमें अनेक संशोधन हुए। प्रमुख संशोधन व्यक्तिगत वार्ता के स्थान पर सामूहिक वार्ता अथवा सम्मेलनीय राजनय का प्रयोग था। निकलसन के अनुसार-"1914-18 के युद्ध के पश्चात् यह अनुभव किया जाने लगा कि राजनयिक वार्ता इसके बाद पूरी तरह गोलमेज सम्मेलनों द्वारा सम्पन्न की जाय।" इसी भाव को लार्ड हैंकी ने इन शब्दों में व्यक्त

किया है- "यह 1914-18 का युद्ध या जिसने महान् शक्तियों के मन्त्रियों के बीच प्रत्यक्ष वार्ता की पद्धति प्रारम्भ हुई जो आज सिर्फ महान् राष्ट्रों के बीच नहीं बल्कि छोटे राष्ट्रों के बीच भी प्रचलित है।" ("It was the war of 1914-18 which brought about the method of direct and frequent consultation between the principal ministers concerned, which continues today not only between the principal powers but to an equal degree between the smaller states."-Lord Hankey)

**सम्मेलन कूटनीति के लाभ/गुण **

सम्मेलन कूटनीति वह प्रक्रिया है जिसमें देशों या अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को एक औपचारिक बैठक में एकत्रित किया जाता है ताकि महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा और बातचीत की जा सके। इस दृष्टिकोण का मुख्य लाभ यह है कि यह विभिन्न भागीदारों को एक साथ लाकर कूटनीतिक चर्चाओं में संलग्न करने का अवसर प्रदान करता है, जो संघर्षों का समाधान, अंतर्राष्ट्रीय समझौतों की स्थापना या साझा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए होते हैं। नीचे सम्मेलन कूटनीति के विस्तृत लाभ दिए गए हैं:

1. **बहुपक्षीय सहभागिता**

* **व्याख्या**: सम्मेलन कूटनीति का प्रमुख लाभ यह है कि इसमें एक साथ कई देश या पक्ष शामिल होते हैं। बहुपक्षीय मंच जैसे कि संयुक्त राष्ट्र, जलवायु परिवर्तन सम्मेलन या व्यापार वार्ताएं विभिन्न पक्षों को एक साथ लाकर चर्चा में शामिल करते हैं।

* **लाभ**: यह समावेशी दृष्टिकोण वैश्विक मुद्दों की व्यापक समझ को बढ़ावा देता है। बहुपक्षीय सहभागिता विशेष रूप से उन मुद्दों को हल करने में महत्वपूर्ण है जिनमें कई देशों की भागीदारी की आवश्यकता होती है, जैसे कि जलवायु परिवर्तन, वैश्विक स्वास्थ्य और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा।

* **उदाहरण**: 2015 में पेरिस समझौता जलवायु परिवर्तन पर एक महत्वपूर्ण सम्मेलन कूटनीति का परिणाम था, जिसमें लगभग 200 देशों ने भाग लिया।

2. **संकट प्रबंधन और संघर्ष समाधान**

* **व्याख्या**: सम्मेलन कूटनीति देशों को संकट या संघर्षों के दौरान संवाद में संलग्न होने का एक कुशल मंच प्रदान करती है। ये सेटिंग्स आमतौर पर नेताओं को सीधे बातचीत करने का अवसर देती हैं, जिससे तनाव को कम किया जा सकता है या संघर्ष को नियंत्रित किया जा सकता है।

* **लाभ**: सम्मेलन कूटनीति तत्काल संवाद, समस्या-समाधान और निर्णय लेने की अनुमति देती है। संकट की स्थिति में त्वरित कार्रवाई की जा सकती है, जो कई बार लंबी वार्ताओं की आवश्यकता को समाप्त कर देती है।

* **उदाहरण**: 1962 में क्यूबा मिसाइल संकट के दौरान, संयुक्त राष्ट्र और अमेरिका और सोवियत संघ के बीच सीधी संचार लाइनें खुली रहीं, जिससे परमाणु युद्ध से बचने में मदद मिली।

3. **संबंध निर्माण और विश्वास**

* **व्याख्या**: सम्मेलन नेताओं और कूटनीतिज्ञों को औपचारिक और अनौपचारिक तरीके से एक-दूसरे से बातचीत करने का अवसर प्रदान करते हैं, जो महत्वपूर्ण रिश्तों के निर्माण में मदद करता है। ये बातचीत केवल आधिकारिक वार्ताओं तक सीमित नहीं होती, बल्कि दोनों पक्षों को एक-दूसरे की प्राथमिकताओं, संस्कृतियों और चिंताओं को समझने का अवसर मिलता है।

* **लाभ**: सम्मेलन कूटनीति एक न्यूट्रल सेटिंग में आमने-सामने मिलने का अवसर प्रदान करती है, जो विश्वास को बढ़ावा देती है और गलतफहमियों को कम करती है। इससे व्यक्तिगत संबंध भी बनते हैं, जो भविष्य में कूटनीतिक समस्याओं को हल

करने में मदद कर सकते हैं।

* **उदाहरण**: उत्तर और दक्षिण कोरिया के बीच अंतरकोरियाई शिखर सम्मेलनों में केवल औपचारिक वार्ता नहीं होती, बल्कि नेताओं के बीच व्यक्तिगत बातचीत भी होती है, जो भविष्य में शांति निर्माण के प्रयासों के लिए आधार तैयार करती है।

4. **पारदर्शिता और वैधता**

* **व्याख्या**: सम्मेलन कूटनीति में किए गए निर्णय अधिक पारदर्शी होते हैं क्योंकि वे अंतर्राष्ट्रीय दर्शकों के सामने होते हैं, कभी-कभी मीडिया कवरेज के साथ। इस पारदर्शिता के कारण निर्णयों की वैधता बढ़ती है, क्योंकि परिणामों को खुले और समावेशी प्रक्रियाओं का परिणाम माना जाता है।

* **लाभ**: पारदर्शी प्रक्रियाएं भाग लेने वाले देशों और वैश्विक समुदाय के बीच विश्वास पैदा करने में मदद करती हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि वार्ता के परिणाम निष्पक्ष और वैध हैं। यह वैधता अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं या जनसाधारण का समर्थन प्राप्त करने में महत्वपूर्ण होती है।

* **उदाहरण**: 2015 में ईरान परमाणु समझौता (जॉइंट कॉम्प्रिहेन्सिव प्लान ऑफ एक्शन) एक बहुपक्षीय वार्ता का परिणाम था, और इसकी वैधता प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों की भागीदारी और वार्ता की पारदर्शिता से बढ़ी।

5. **वार्ता में दक्षता**

* **व्याख्या**: सम्मेलन कूटनीति सभी संबंधित पक्षों को एक स्थान पर लाकर वार्ता को एकत्रित करती है। इससे समय-समय पर होने वाली द्विपक्षीय बातचीत की आवश्यकता को कम किया जा सकता है और समान मुद्दों पर टुकड़ों-टुकड़ों में बातचीत करने का जोखिम भी कम होता है।

* **लाभ**: जब सभी प्रमुख हितधारक एक साथ होते हैं, तो सम्मेलन कूटनीति निर्णयों या समझौतों तक पहुँचने की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित कर सकती है। यह विशेष रूप से तब फायदेमंद होता है जब कई देशों को जटिल और सीमा पार चुनौतियों को हल करने के लिए एकजुट होने की आवश्यकता होती है।

* **उदाहरण**: विश्व व्यापार संगठन (WTO) की वार्ताएं, विशेष रूप से व्यापार उदारीकरण और विवाद समाधान के बारे में, अक्सर सम्मेलन सेटिंग्स में होती हैं, जो विभिन्न देशों को एक साथ बैठकर वैश्विक व्यापार नियमों के अनुरूप बातचीत करने का अवसर देती हैं।

6. **मानकों और नियमों का मानकीकरण**

* **व्याख्या**: अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन वैश्विक मानकों, नियमों और समझौतों के निर्माण और स्थापना के लिए एक मंच प्रदान करते हैं। यह विशेष रूप से उन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है, जैसे मानवाधिकार, व्यापार, और पर्यावरणीय नीति, जहाँ देशों के बीच समन्वय जरूरी होता है।

* **लाभ**: सम्मेलन कूटनीति का उपयोग करके संधियों और समझौतों को मानकीकरण किया जा सकता है, जिससे सभी देशों के लिए एक समान स्तर का प्रतिस्पर्धात्मक माहौल बनता है। इससे देशों को साझा सिद्धांतों को अपनाने में मदद मिलती है, जो अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देता है।

* **उदाहरण**: जिनेवा कन्वेंशन, जिसने युद्ध बंदियों के इलाज के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून स्थापित किया, सम्मेलन कूटनीति का परिणाम था।

7. **वैश्विक चुनौतियों को संबोधित करने के लिए मंच**

* **व्याख्या**: दुनिया की कई सबसे बड़ी चुनौतियाँ—जैसे जलवायु परिवर्तन, महामारियां, आतंकवाद, और आर्थिक

असमानता—वैश्विक स्तर पर समन्वित कार्रवाई की मांग करती हैं। सम्मेलन देशों को एकजुट होकर इन मुद्दों पर चर्चा करने, योजना बनाने और सामूहिक समाधान लागू करने का एक संगठित मंच प्रदान करते हैं।

* **लाभ**: विशेषज्ञों और कूटनीतिज्ञों का एक मंच पर आना, सम्मेलन कूटनीति को नई और अभिनव समाधानों के लिए विचार-विमर्श करने का एक उत्कृष्ट अवसर प्रदान करता है। इससे साझेदारी भी बनती है, जो इन वैश्विक मुद्दों से निपटने में मदद करती है।

* **उदाहरण**: 1992 का रियो डि जिनेरियो में पृथ्वी सम्मेलन, जो वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों को संबोधित करने में एक महत्वपूर्ण क्षण था, ने संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC) और अन्य महत्वपूर्ण पर्यावरणीय समझौतों की स्थापना की।

8. **संघर्ष से पहले संवाद को बढ़ावा**

* **व्याख्या**: सम्मेलन कूटनीति संवाद और वार्ता को बढ़ावा देती है, जो संघर्षों को हिंसा में बदलने से रोक सकती है। संरचित संवाद के माध्यम से देशों को अपनी शिकायतों को व्यक्त करने, अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत करने और शांतिपूर्ण समाधान खोजने का अवसर मिलता है।

* **लाभ**: यहां तक कि अत्यधिक विवादित परिस्थितियों में भी, सम्मेलन कूटनीति एक गैर-हिंसक मार्ग प्रदान करती है, जो चर्चा और संघर्ष समाधान को बढ़ावा देती है। इससे शांति का माहौल बना रहता है और युद्ध की संभावना कम होती है।

* **उदाहरण**: 1978 में कैम्प डेविड समझौते, जहां मिस्र और इजरायल ने शांति समझौता किया, यह दिखाता है कि सम्मेलन कूटनीति लंबे समय से चले आ रहे क्षेत्रों और राजनीतिक विवादों को हल कर सकती है।

निष्कर्ष

सम्मेलन कूटनीति अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देने, संघर्षों को हल करने, रिश्ते बनाने और वैश्विक मानकों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह वैश्विक चुनौतियों को प्रबंधित करने और देशों के बीच शांति और सहयोग के फ्रेमवर्क को बनाने के लिए एक आवश्यक उपकरण है। यह सीधे, बहुपक्षीय जुड़ाव का एक मंच प्रदान करके अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की स्थिरता और वैश्विक लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान करता है।

सम्मेलनीय राजनय के दोष (Demerits of Conference Diplomacy)

सम्मेलनीय राजनय में जहां अनेकों गुण पाये जाते हैं, वहां उसमें कुछ दोष भी पाये जाते हैं। सम्मेलनीय राजनय के दोषों को निम्नलिखित रूप से रखा जा सकता है-

(1) सम्मेलनीय राजनय में जहाँ राष्ट्रों के प्रतिनिधि बार-बार मिलते हैं, वहां कभी-कभी मित्रता तथा विश्वास के स्थान पर अविश्वास तथा वैमनस्य एवं ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए लार्ड कर्जन तथा रवाइन करे के मध्य एक बार वैमनस्य उत्पन्न हो जाने पर सन्धिवार्ता सफल न हो सकी।

(2) कभी-कभी सम्मेलनों में प्रधानमन्त्रियों तथा विशेषज्ञों के मध्य प्रगाढ़ मित्रता पैदा हो जाने से मित्रता के आवेश में ऐसे निर्णय हो जाते हैं जिनका पालन करना दुष्कर हो जाता है। फलतः सम्मेलनीय राजनय का महत्त्व कम हो जाता है।

(3) सम्मेलनीय राजनय में कभी-कभी सन्धि अथवा समझौते इतने शीघ्र हो जाते हैं कि जनमत की सही परीक्षा नहीं हो पाती। यदि बाद में जनमत विपक्ष में हो गया तो सन्धि भंग हो जाती है और सम्मेलनीय राजनय निष्फल हो जाता है। व्यक्तिगत वार्ताओं में अधिक समय लगता है और इस बीच में जनमत की सही राय का ज्ञान हो जाता है जिससे सन्धियों के क्रियान्वियन

में अनिश्चितता नहीं रहती।

(4) सम्मेलनीय राजनय के समझौते में शीघ्र निर्णय ले लिया जाता है। जिस समस्या को राजनयिक समझौता-वार्ता के माध्यम से बीस वर्ष तक भी नहीं सुलझाया जा सकता उसे राज्याध्यक्षों के मिलने पर एक ही दिन में सुलझा लिया जाता है, परिणामस्वरूप व्यावसायिक राजनयज्ञों का महत्त्व घट जाता है।

(5) सम्मेलनीय राजनय प्रधान मन्त्रियों की निजी महत्त्वाकांक्षाओं के कारण कभी असफल हो जाते हैं क्योंकि उनमें गलतफहमी उत्पन्न हो जाने से सन्धि वार्ता में छींटाकशी का पुट अधिक हो जाता है। जिससे सम्बन्ध अच्छा होने के स्थान पर बिगड़ जाते हैं।

(6) सम्मेलनों में भाग लेने वाले प्रतिनिधि अपने व्यस्त कार्यक्रम में से थोड़ा समय विचार-विमर्श के लिए दे पाते हैं तथा सन्धियों की गहराई के बारे में सन्तुलित ढंग से नहीं सोच पाते। इस शीघ्रता से किये गये निर्णयों से लाभ के स्थान पर हानि की अधिक सम्भावना होती है। निकलसन ने भी इसी ओर अंगति करते हुए कहा है कि "बाद-विवाद में जल्दबाजी शान्ति काल में लाभ नहीं पहुँचाती है।"

(7) कभी-कभी सम्मेलनीय राजनय में गुप्त बात समय से पूर्व प्रकट हो जाती है और समझौते घरे-के-घरे रह जाते हैं।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गुटबन्दी होने के कारण सम्मेलनीय राजनय का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। विचारधारा, अर्थव्यवस्था तथा राष्ट्रीय हितों का विरोध एवं अनेक पूर्वाग्रह होने के कारण सम्मेलनों में अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचारों का स्वस्थ आदान-प्रदान सम्भव नहीं हो पाता है। प्रत्येक पक्ष सम्मेलन का दुरुपयोग अपने राजनीतिक प्रचार के लिए करता है।

व्यक्तिगत राजनय [PERSONAL DIPLOMACY]

Q. वैयाक्तिक राजनय पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (Write a short notes on Personal Diplomacy.)

उत्तर-व्यक्तिगत राजनय का अर्थ (Meaning of Personal Diplomacy) - पामर तथा पर्किन्स (Palmer and Perkins) ने व्यक्तिगत राजनय को शिखर सम्मेलन जैसा माना है क्योंकि इसमें विभिन्न राष्ट्रों के उच्चतम नेताओं के मध्य प्रत्यक्ष तथा व्यक्तिगत बातचीत तथा समझौता वार्ताएं शामिल होती हैं। व्यक्तिगत राजनय उस समय कार्यान्वित होता है जब मुख्य राजनीतिक समस्याओं तथा विषयों के द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय सम्बन्धों पर परिचर्चा करनी होती है तथा हल ढूँढ़ने होते हैं। यह प्रथा काफी पुरानी है, परन्तु 1945 के बाद इसके असाधारण विकास ने राजनय की शैली के रूप में इसे नये उपाय दिए हैं।

राजनय के इस रूप के अनुसार दो देशों के राजनयिक विषयों का संचालन स्वयं उन देशों के विदेश मन्त्रियों, प्रधानों एवं प्रमुखों द्वारा किया जाता है, न कि उनके राजनयिक प्रतिनिधियों द्वारा। अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर इन उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा ही निर्णय लिए जाते हैं। जेनेवा सम्मेलन, वाण्डुंग सम्मेलन, अल्जीयर्स सम्मेलन, युद्धकाल के शिखर सम्मेलन, अटलांटिक सम्मेलन 1941, काहिरा घोषणा 1941, सम्मेलन 1943, यालटा सम्मेलन 1945, रूजवेल्ट, स्टालिन तथा चर्चिल के बीच पोस्टडैम सम्मेलन 1945 तथा कुछ अनिवार्य समस्याओं के हल ढूंद पाने में इनकी सफलता ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में व्यक्तिगत राजनय के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया। तबसे शिखर बैठकें राजनयिक समझौता वार्ताओं की नियमित विशेषता बनी हुई हैं। शीतयुद्ध काल में नाटो (NATO) शक्तियों के विदेश मन्त्री अपने सामान्य हित के मामलों पर विचार करने के लिए कई बार मिले।

**व्यक्तिगत कूटनीति के लाभ (Merits of Personal Diplomacy)**

व्यक्तिगत कूटनीति का अर्थ है जब राष्ट्राध्यक्ष या शीर्ष राजनयिक सीधे एक-दूसरे से संवाद करते हैं, पारंपरिक नौकरशाही

चैनलों को दरकिनार करते हुए। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत विश्वास और तालमेल के माध्यम से राजनयिक लक्ष्यों को आगे बढ़ाना होता है।

1. **विश्वास और व्यक्तिगत संबंध बनाना**

व्यक्तिगत कूटनीति नेताओं को एक-दूसरे के साथ सीधे, भावनात्मक रूप से जुड़ने का अवसर देती है। इससे आपसी विश्वास बढ़ता है और वे एक-दूसरे के दृष्टिकोण व बाधाओं को बेहतर समझते हैं।

* **उदाहरण**: द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूज़वेल्ट और ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल के बीच गहरा व्यक्तिगत संबंध बना, जिससे मित्र देशों की साझेदारी मजबूत हुई।

2. **राजनयिक गतिरोध को तोड़ना**

जब औपचारिक राजनयिक प्रयास विफल हो जाते हैं, तो व्यक्तिगत कूटनीति गतिरोध को तोड़ने में मदद करती है। राष्ट्राध्यक्ष ऐसे निर्णय ले सकते हैं जो अन्य अधिकारी नहीं ले सकते।

* **उदाहरण**: 1978 के कैम्प डेविड समझौते में अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर ने मिस्र के अनवर सादात और इज़राइल के मेनाकेम बेगिन के बीच मध्यस्थता की, जिससे ऐतिहासिक शांति समझौता हुआ।

3. **निर्णय लेने की प्रक्रिया को तेज़ करना**

राष्ट्राध्यक्षों के बीच सीधी बातचीत से निर्णय जल्दी लिए जा सकते हैं, क्योंकि इससे नौकरशाही की जटिलताएं कम हो जाती हैं।

* **उदाहरण**: शीत युद्ध के दौरान वाशिंगटन और मास्को के बीच "हॉटलाइन" स्थापित की गई थी ताकि संकट के समय त्वरित और सीधी बातचीत हो सके।

4. **लचीलापन और रचनात्मकता की अनुमति**

व्यक्तिगत कूटनीति नेताओं को औपचारिक सीमाओं से बाहर जाकर नए विचार और समाधान खोजने की स्वतंत्रता देती है।

* **उदाहरण**: 1980 के दशक में रोनाल्ड रीगन और मिखाइल गोर्बाचेव की व्यक्तिगत बैठकों ने ऐतिहासिक हथियार नियंत्रण समझौतों को संभव बनाया।

5. **सॉफ्ट पावर को बढ़ावा देना**

जब कोई नेता करिश्माई, सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील या नैतिक दृष्टिकोण अपनाता है, तो उनकी व्यक्तिगत कूटनीति देश की सकारात्मक छवि और वैश्विक प्रभाव को बढ़ाती है।

* **उदाहरण**: नेल्सन मंडेला की व्यक्तिगत छवि और नैतिक नेतृत्व ने दक्षिण अफ्रीका की वैश्विक प्रतिष्ठा को बहुत बढ़ाया।

6. **दीर्घकालिक रणनीतिक साझेदारी को बढ़ावा देना**

व्यक्तिगत कूटनीति से ऐसे द्विपक्षीय या बहुपक्षीय संबंध बन सकते हैं जो सरकारों के बदलने के बाद भी टिके रहते हैं।

* **उदाहरण**: द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका और जापान के नेताओं के बीच बने संबंधों ने दोनों देशों को घनिष्ठ सहयोगी बना दिया।

7. **संकट प्रबंधन में सहायक**

अंतरराष्ट्रीय संकट के समय व्यक्तिगत कूटनीति तनाव कम करने और युद्ध जैसे हालात टालने में मदद कर सकती है।

* **उदाहरण**: क्यूबा मिसाइल संकट के दौरान अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी और सोवियत नेता निकिता ख्रुश्चेव के बीच सीधी बातचीत ने परमाणु युद्ध टाल दिया।

सहायता का राजनय [DIPLOMACY OF AID]

विदेशी सहायता का अर्थ है आर्थिक, भौतिक तथा तकनीकी सहायता, जो एक दाता राष्ट्र, प्रायः धनी राष्ट्र, गरीब, पिछड़े तथा सहायता प्राप्ति के इच्छुक राज्य को देता है।

मार्गेन्थो के अनुसार "विदेशी सहायता का अर्थ है पैसे का, वस्तुओं का तथा सेवाओं का एक राष्ट्र (दाता) से दूसरे राष्ट्र (प्राप्तकर्ता) तक स्थानान्तरण। यह विकसित राष्ट्रों द्वारा निर्धन तथा कम-विकसित राष्ट्रों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता की व्यवस्था है।" वास्तव में समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विदेशी सहायता राष्ट्रीय नीति का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण बन गयी है। इसे मित्र-राष्ट्रों का समर्थन बनाए रखने, नए मित्र बनाने तथा राष्ट्रीय हितों को प्रभावशाली ढंग से प्राप्त करने के लिए मूल्यवान साधन माना जाता है। राष्ट्रीय हित के उपकरण के रूप में विदेशी सहायता का प्रयोग कोई नई बात नहीं है। सदियों से देशों द्वारा इसका प्रयोग होता आया है। काफी लम्बे समय से राज्य आर्थिक साधनों को, राजनीति के एक अंग के रूप में अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग कर रहे हैं। राजनय के आर्थिक साधनों का उपयोग कोई नई बात नहीं है। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में ब्रिटिश सरकार ने आर्थिक सहायता का प्रयोग अपने उपनिवेशों तथा निर्भर राष्ट्रों से सैनिक, भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया था। मार्गेन्यो के शब्दों में "ब्रिटिश व्यवस्था की आर्थिक सहायता एक प्रकार से उस पर निर्भर तथा सहायक राष्ट्रों के बीच श्रम का बंटवारा हुआ करता था, जो अपने साधनों को इकट्ठा करते थे। एक पैसे, माल तथा प्रशिक्षण की आपूर्ति करता था तथा दूसरा मानव-शक्ति का प्रबन्ध करता था। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में धनी तथा विकसित राष्ट्रों, विशेषतथा भूतपूर्व सोवियत संघ तथा अमेरिका द्वारा आर्थिक सहायता का प्रयोग राष्ट्रीय नीति के उपकरण के रूप में किया जाता रहा। वे इसका प्रयोग मित्र बनाने तथा अपने प्रभाव क्षेत्रों को विस्तृत करने के लिए करते थे। 1947 के बाद आर्थिक सहायता राष्ट्रीय नीति का एक नियमित आर्थिक उपकरण बन गई। यह प्रत्येक राष्ट्र की विदेश नीति का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व बन गई। एक धनी तथा शक्तिशाली राष्ट्र इसका प्रयोग अपना प्रभाव दूसरे राष्ट्रों पर बनाए रखने तथा बढ़ाने के लिए करने लगा।

किसी भी राष्ट्र के उद्देश्यों में राष्ट्रीय आर्थिक विकास को अधिकाधिक महत्त्व दिया जाता है। अतः किसी भी देश की विदेश नीति सशक्त आर्थिक चेष्टाओं से निर्धारित होती है। यूजीन ब्लैक ने अपनी पुस्तक 'आर्थिक विकास का राजनय' (The Diplomacy of Economic Development) में बताया है कि आर्थिक राजनय दिन पर दिन महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। यह निर्विवाद है कि किसी भी देश के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध उसकी अपनी आवश्यकताओं से प्रभावित रहते हैं। इस प्रकार बढ़े स्तर पर राज्यों को सहायता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक अटूट अंग बन गया है। यही कारण है कि आज आर्थिक एवं व्यापारिक राजनय पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। आर्थिक राजनय का प्रथम प्रयोग द्वितीय महायुद्ध के कारण यूरोप में जो विनाश हुआ, उसको दूर करने के आरम्भ हुआ था। संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध 'डालर साम्राज्यवाद' और 'डॉलर राजनय' का आरोप लगाया जाता है। 'डालर राजनय' शब्द का प्रारम्भ राष्टपति टेफट के काल में हुआ।

यह ठीक ही कहा गया है कि 'सहायता का राजनय' लोगों के उदर के माध्यम से उनके मस्तिष्क पर अधिकार करने का प्रयास है। सहायता देने वाले राज्य अपने राष्ट्रीय हित की सिद्धि के लिए ऐसा करते हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति केनेडी ने 1963 में कांग्रेस के समक्ष अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि- "यह बात पूर्णतः संदेह रहित है कि हमारे सहायता कार्यक्रम हमारी राष्ट्रीय परम्पराओं के अनुकूल है तथा हमारे राष्ट्रीय हित की पूर्ति करते हैं।" यह सत्य है कि राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्यों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। आज का राजनय-राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय अथवा विश्वव्यापी राजनीतिक अधिक है। परन्तु इस बात को भी स्वीकार करना पड़ेगा कि आर्थिक साधन राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक है। राज्यों को आर्थिक सहायता, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का आधार बन गया है। आज राज्यों के गैर-राजनीतिक उद्देश्य

मूलतः आर्थिक और व्यापारिक हैं। इनके अन्तर्गत राज्य नये बाजारों की प्राप्ति, अपने आर्थिक हितों की रक्षा, आर्थिक सूचनाओं की प्राप्ति आदि कार्य करते हैं। पिछले कुछ वर्षों में व्यापारिक राजनय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक अभिन्न अंग बन गया है। स्वतन्त्र व्यापार की समाप्ति के साथ राज्यों द्वारा व्यापार अपने हाथों में ले लिया। आर्थिक व्यवस्था को राष्ट्रीय हित प्राप्ति का एक अच्छा साधन बना लिया गया है। आज राज्य इस व्यवस्था का खुलकर उपयोग कर रहे हैं। अपने राज्य के व्यापारिक और आर्थिक हितों की प्राप्ति के लिए आधुनिक राजनय ने एक विशेष मशीन की स्थापना की है जो वाणिज्य दूतावासों से भिन्न है, यह है सहायता का राजनय ।

यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि किसी भी देश द्वारा दी गई किसी भी प्रकार की सहायता की कीमत राज्य को चुकानी पड़ती है। शकलॉक की भांति वह राज्य अपनी कीमत माँगता ही है। विदेशी सहायता वैसे अच्छी लगती है, परन्तु इसके भीतर खतरा भी छिपा रहता है। कोई भी स्वाभिमानी राज्य विदेशी हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता। किसी भी राज्य की विदेशी सहायता पर निर्भरता जितनी कम होगी उतनी ही अधिक राजनीतिक स्वतन्त्रता होगी। आर्थिक सहायता की विकसित राज्यों पर निर्भरता और भी अधिक बढ़ी है। इन राज्यों ने उग्र राष्ट्रीयता, गृहयुद्ध, पड़ोसी राज्यों के साथ तनाव की स्थिति आदि के कारण अपने सभी स्रोत और विदेशी सहायता को शस्त्रों के खरीदने में अपव्यय करना प्रारम्भ कर दिया है। सहायता देने वाले राज्यों के उद्योगपति, शस्त्र बनाने वाले और युद्ध प्रेमी देशों की आर्थिक स्थिति को जो शस्त्रों के बेचने पर निर्भर हैं, को समृद्धिशाली बनाये रखेंगे।

कई अर्थों में खाद्यानों की सहायता विदेशी सहायता का सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण अस्त्र बन गया है। यह जनता के स्तर पर प्रचार का एक अच्छा माध्यम है क्योंकि यह "जन-मन का राजनय' (People to People Diplomacy) है। प्रायः राज्य राजनीतिक उद्देश्य प्राप्ति के लिए खाद्यान्न देते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1954 में 'शान्ति के लिए खाद्यान प्रोग्राम' (Food for Peace Programme) आरम्भ किया था।

विदेशी सहायता के प्रकार*

यह सहायता विभिन्न रूपों में दी जाती है और इसका उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय संबंधों को प्रभावित करना होता है।

1. **द्विपक्षीय सहायता (Bilateral Aid)**

* **परिभाषा**: जब एक देश सीधे किसी दूसरे देश को सहायता प्रदान करता है।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

 * द्विपक्षीय संबंध मजबूत करना।

 * राजनीतिक समर्थन प्राप्त करना (जैसे संयुक्त राष्ट्र में वोट)।

 * आर्थिक या नीतिगत सुधारों को बढ़ावा देना।

* **उदाहरण**: अमेरिका द्वारा मिस्र को दी गई सहायता ताकि वह इज़राइल के साथ शांति बनाए रखे।

2. **बहुपक्षीय सहायता (Multilateral Aid)**

* **परिभाषा**: सहायता जो अंतरराष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से दी जाती है (जैसे UN, विश्व बैंक)।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

* अधिक वैधता और निष्पक्षता प्रदर्शित करना।

* **उदाहरण**: विश्व बैंक के माध्यम से अफ्रीका में विकास परियोजनाओं के लिए सहायता।

3. **सशर्त सहायता (Tied Aid)**

* **परिभाषा**: वह सहायता जो प्राप्तकर्ता को दाता देश से ही वस्तुएं या सेवाएं खरीदने के लिए बाध्य करती है।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

  * दाता देश की अर्थव्यवस्था को लाभ पहुंचाना।

  * आर्थिक निर्भरता बढ़ाना।

* **आलोचना**: यह कम प्रभावी और महंगी हो सकती है।

* **उदाहरण**: निर्माण कार्य के लिए दिए गए धन से केवल दाता देश की कंपनियों को काम देना।

4. **अवबंधित सहायता (Untied Aid)**

* **परिभाषा**: वह सहायता जिस पर कोई शर्त नहीं होती कि उसे कहाँ और कैसे खर्च किया जाए।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

  * सद्भाव और भरोसे को बढ़ाना।

  * प्राप्तकर्ता की स्वतंत्रता को बढ़ावा देना।

* **उदाहरण**: स्कैंडेनेवियाई देशों द्वारा दी जाने वाली मानवीय सहायता।

5. **सैन्य सहायता (Military Aid)**

* **परिभाषा**: रक्षा उपकरण, प्रशिक्षण या सैन्य खर्च के लिए दी गई वित्तीय सहायता।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

  * मित्र देशों को सशक्त बनाना।

  * क्षेत्रीय सुरक्षा बनाए रखना।

* **उदाहरण**: अमेरिका द्वारा यूक्रेन को दी गई सैन्य सहायता।

6. **मानवीय सहायता (Humanitarian Aid)**

* **परिभाषा**: आपदा, युद्ध या महामारी के दौरान दी गई आपातकालीन सहायता।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

  * दाता देश की नैतिक छवि को प्रकट करना।

  * संघर्ष क्षेत्रों में प्रभाव बनाना।

* **उदाहरण**: सीरिया संकट में शरणार्थियों के लिए आपातकालीन सहायता।

7. **तकनीकी सहायता (Technical Assistance)**

* **परिभाषा**: ज्ञान, कौशल या तकनीक का हस्तांतरण।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

  * संस्थागत सुधारों को बढ़ावा देना।

  * दीर्घकालिक प्रभाव और निर्भरता बनाना।

* **उदाहरण**: विकासशील देशों के न्यायाधीशों को कानूनी प्रशिक्षण प्रदान करना।

8. **ऋण माफी या राहत (Debt Relief / Forgiveness)**

* **परिभाषा**: प्राप्तकर्ता देश के कर्ज को माफ करना या पुनर्गठित करना।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

  * सुधारों को प्रोत्साहित करना।

  * रणनीतिक सहयोग सुनिश्चित करना।

* **उदाहरण**: G8 देशों द्वारा गरीब देशों का कर्ज माफ करना।

9. **विकास सहायता (Development Aid)**

* **परिभाषा**: बुनियादी ढांचे, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के लिए दी जाने वाली दीर्घकालिक सहायता।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

  * सतत विकास को बढ़ावा देना।

  * दाता देश की वैश्विक भूमिका को मजबूत करना।

* **उदाहरण**: जापान की दक्षिण-पूर्व एशिया में ODA सहायता।

10. **शर्तों से जुड़ी सहायता (Conditional Aid)**

* **परिभाषा**: सहायता जो विशेष नीतियों या सुधारों पर आधारित होती है।

* **कूटनीतिक उद्देश्य**:

  * राजनीतिक या आर्थिक प्रणाली को प्रभावित करना।

  * लोकतंत्र, मानवाधिकार या बाज़ार सुधार को बढ़ावा देना।

* **उदाहरण**: यूरोपीय संघ द्वारा उम्मीदवार देशों को सुधारों के लिए दी गई सहायता।

***निष्कर्ष (Conclusion)**:**

विदेशी सहायता केवल आर्थिक उपकरण नहीं है, बल्कि यह एक रणनीतिक कूटनीतिक साधन है। विभिन्न देशों द्वारा दी जाने वाली सहायता उनके **राजनयिक उद्देश्यों** जैसे प्रभाव बढ़ाना, गठबंधन बनाना, या नैतिक नेतृत्व स्थापित करने के लिए उपयोग की जाती है।

विदेशी सहायता के लक्ष्य (The Objects of Foreign Aid)-एक राज्य द्वारा विदेशी सहायता के राजनय का अनुशीलन कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। सहायता राजनय के लक्ष्य निम्नलिखित हैं-

(1) आर्थिक सहायता का प्रयोग सदैव अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए किया जाता है (Economic Aid is always used as a means for in reasing one's Influence)-विदेशी सहायता का उद्देश्य दाता राष्ट्र के हितों को बनाए रखने तथा प्रोत्साहित करने के लिए अधिक प्रापक राष्ट्र के हितों की रक्षा के लिए कम होता है। इसका प्रयोग हमेशा एक राजनीतिक उपकरण या उत्तोलक (Lever) के रूप में दाता राष्ट्र के द्वारा अपनी नीतियों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। जिन राज्यों को कर्ज के रूप में धन दिया जाता है उनसे यह आशा की जाती है कि वह राज्य स्वाभाविक रूप से विश्व राजनीति में कर्जदाता का सहयोग करेगा।

(2) विदेशी सहायता का व्यावहारिक प्रभाव (Practical effect of Foregin Aid)-यास्तविक रूप में विदेशी सहायता रिश्वत तथा पुरस्कार का एक गौरवान्वित रूप है, जो दाता राष्ट्र प्रापक राष्ट्र को अपने लाभों तथा सम्भावित लाभों के लिए देता है ताकि वह प्रापक राष्ट्र की नीतियों को प्रभावित कर सके तथा वह अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति कर सके।

(3) अमीर देशों द्वारा विदेशी सहायता गरीब देशों पर नियन्त्रण के लिए प्रयोग (Use of Foreign Aid by the Rich for Controlling the Poor Countries)-दाता राष्ट्र द्वारा प्रापक राष्ट्र को दी जाने वाली आर्थिक सहायता सैद्धान्तिक रूप में प्रापक राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए होती है। परन्तु वास्तव में इसका प्रयोग सदैव प्रापक राष्ट्र की नीतियों को इस तरह प्रभावित करने के लिए किया जाता है कि दाता राष्ट्र के हितों को प्रोत्साहन मिल सके। विकसित राज्यों ने सदैव ऐसा ही किया है।

(4) मित्र देशों की संख्या में वृद्धि (Increase in the number of Friendly Countries)-अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में मैत्री, सहयोग और सौहार्दपूर्ण वातावरण आवश्यक है। ऐसा वातावरण आवश्यकता के समय सहायता करने पर ही उत्पन्न किया जा सकता है और एक सन्तुष्ट देश ही मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रखता है। इसीलिए विदेशी को सहायता देकर विकसित राज्य विश्व में अपने पक्ष को सबल करने में प्रयत्नशील रहते हैं। उन्हें इस साधन से अनेक मित्र बनाने में काफी सहायता मिलती है।

(5) अर्थव्यवस्था के संतुलन में सहायता (A Helper in the Balancing of Economic Conditions)-संयुक्त राज्य अमेरिका ने औद्योगिक प्रगति द्वारा अपना उत्पादन पर्याप्त मात्रा में बढ़ा लिया है। इस सारे उत्पादन की खपत अपने देश में नहीं हो पाती है अतः विदेशी बाजारों की खोज की जाती है। अतिरिक्त माल वह सहायता के रूप में दूसरे राज्यों को देता है ताकि उसके माल की खपत भी होती रहे और अर्थव्यवस्था का संतुलन भी बना रहे। अमेरिका जरूरतमंद देशों को इस शर्त पर सहायता देता है कि वे उसी के देश की माल की ही खरीददारी करें ताकि संयुक्त राज्य की अर्थव्यवस्था सन्तुलित बनी रहे।

(6) देश रक्षा के लिए अनिवार्य (Compulsory for the Defence of the Country)-वैदेशिक सहायता का राजनय राज्यों के अस्तित्व और सुरक्षा की दृष्टि से भी उपयोगी होता है। विदेशों को सहायता प्रदान करके उनकी मित्रता जीत ली जाती है, जो कि आत्मरक्षा के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है।

(7) विदेशी सहायता का राजनीतिक प्रयोग (Political use of the Foreign Aid)-विदेशी सहायता कुछ राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग की जाती है-

(i) गरीब राज्य की अर्थव्यवस्था तथा नीतियों को प्रभावित करना तथा इसके द्वारा राजनीति को प्रभावित करना,

(ii) गरीब राष्ट्रों के विदेशी मामलों तथा नीतियों में वांछित परिवर्तन करवाना इत्यादि।

बारनेट का मत है कि सहायता देने वाले देश को चाहिए कि वह सहायता प्राप्त देश को पूर्ण सम्मान दे तथा उसे अपनी बराबरी का मानें, न कि निम्न। पोप पॉल छठे ने संयुक्त राष्ट्र के समक्ष एक भाषण में राष्ट्रों को याद दिलाया था कि "भूखों का पेट भरना ही काफी नहीं है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि हर व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल जीवन व्यतीत कर सके।"

Q. 3. भारतीय राजनय के इतिहास तथा प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर-भारतीय राजनय का इतिहास (History of Indian Diplomacy)- प्रत्येक देश अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के आधार पर ही अपनी विदेश नीति का निर्माण करता है। उसकी ये परिस्थितियाँ भौगोलिक स्थिति, राष्ट्रीय चरित्र एवं परम्पराओं से प्रभावित होती हैं। इन्हीं परम्पराओं का प्रभाव उसकी विदेश नीति पर पड़ता है। विदेश नीति का अंग होने के कारण राजनय की इन परिस्थितियों से प्रभावित होता है। इस तथ्य का प्रतिपादन नेहरू ने संसद में दिए अपने एक भाषण में किया था।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की विदेश नीति का मूल आधार साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध और स्वतंत्रता संग्राम का समर्थन करना था। भारत ने शान्ति की नीति के आधार पर ही पंचशील के सिद्धान्तों को स्वीकार किया था। इससे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को एक नया आयाम मिला। असंलग्नता के इस आयाम का अनेक देश पालन करते रहे हैं। अमेरिका और ब्रिटेन भी पार्थक्य तथा उलझाव से अलग रहने की नीति का पालन करते रहे हैं। किन्तु राष्ट्रीय हितों के आधार पर इन देशों ने इस नीति का त्याग कर दिया। इसीलिए ब्रिटेन अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण एक नायिक शक्ति के रूप में उभरा। इस प्रकार प्रत्येक देश अपने विशिष्ट संदर्भमें अपनी विदेश नीति को निर्मित करता है और उसी के अनुसार अपनी राजनयिक नीतियों व गतिविधियों को कार्य रूप में परिणित करता है।

स्वतंत्रता के बाद भारत ने अनेक देशों में अपने दूतावास खोले। सन् 1948-49 ई. में भारत के 30 स्थानों में तथा 1949-50 में 40 स्थानों पर भारतीय दूतावास थे। अब तक भारत सभी राष्ट्रमंडलीय प्रदेशों, अमेरिका, रूस आदि देशों के साथ अपने दूत स्तर के सम्बन्ध स्थापित कर चुका था। 1976 में भारत के 103 राज्यों के साथ राजदूत, 33 के साथ उच्चायुक्त, 5 मिशन, 13 महावाणिज्य दूत, 5 वाणिज्य दूत और 13 अवैतनिक महावाणिज्य दूत तथा वाणिज्य दूत के स्तर के सम्बन्ध थे। इस काल में भारतीय राजनय के अधिकांश व्यक्ति आई.सी.एस. के अधिकारी थे। इसके अतिरिक्त कुछ गैर व्यावसायिक व्यक्ति भी दूतों के रूप में कार्य कर रहे थे। नेहरू, मेनन और पणिक्कार तथा वाजपेयी के प्रयत्नों के फलस्वरूप विदेश सेवा का पुनर्गठन किया गया। नियुक्ति से पूर्व राजदूतों को नेहरू द्वारा तैयार प्रपत्र में कुछ परामर्श दिए जाते थे। जिसमें भारतीय संस्कृति को ध्यान में रखने तथा अंग्रेजियत के विरुद्ध चेतावनी दी गई थी।

अंग्रेजों से विरासत में प्राप्त राजनयिक सेवा भारतीय हितों की पूर्ति में निष्ठापूर्वक लग गए। अंग्रेजियत में होने पर भी इन राजनयिकों ने भारत की अपनी योग्यता और लगन से सेवा की, उनकी इस सेवा की भावना की चर्चा पं. नेहरू ने अपने भाषण में की तथा गर्व प्रदर्शित किया।

भारतीय कूटनीति की मुख्य विशेषताएं

1. **रणनीतिक स्वायत्तता / गुटनिरपेक्षता**

भारत पारंपरिक रूप से स्वतंत्र विदेश नीति अपनाता रहा है, जो शीत युद्ध काल में **गुटनिरपेक्ष आंदोलन (NAM)** के माध्यम से स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आज की बहुध्रुवीय दुनिया में भी भारत **मुद्दों पर आधारित गठबंधन** करता है, स्थायी सैन्य गुटों से दूर रहता है।

* **उदाहरण**: भारत अमेरिका (QUAD) और रूस (हथियारों की खरीद, ऊर्जा सहयोग) दोनों से संबंध रखता है।

2. **पंचशील और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व**

भारतीय कूटनीति का आधार 1954 में चीन के साथ तय किए गए **पंचशील सिद्धांत** रहे हैं:

* संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता का सम्मान

* एक-दूसरे पर आक्रमण न करना

* आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना

* समानता और पारस्परिक लाभ

* शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व

3. **सॉफ्ट पावर और सांस्कृतिक कूटनीति**

भारत अपनी संस्कृति और सभ्यता के माध्यम से वैश्विक प्रभाव बढ़ाता है:

* **योग**, **आयुर्वेद**, भारतीय भोजन का प्रचार

* सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम

* बॉलीवुड और भारतीय टीवी

* **भारतीय प्रवासी समुदाय** की महत्वपूर्ण भूमिका

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस इस नीति के उदाहरण हैं।

4. **आर्थिक कूटनीति**

1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद से विदेश नीति में आर्थिक हित प्रमुख हो गए हैं:

* **व्यापार समझौते** और मुक्त व्यापार (जैसे ASEAN, UAE के साथ)

* ऊर्जा स्रोतों की सुरक्षा (खाड़ी, अफ्रीका, मध्य एशिया से)

* विदेशी निवेश को आकर्षित करना

* वैश्विक आर्थिक मंचों में सक्रिय भूमिका (BRICS, G20, WTO)

5. **सुरक्षा और रणनीतिक कूटनीति**

भारत की भौगोलिक स्थिति इसे सुरक्षा-केंद्रित कूटनीति अपनाने को बाध्य करती है:

* **पाकिस्तान** और **चीन** से जटिल संबंधों का प्रबंधन

* **हिंद-प्रशांत क्षेत्र** में रणनीतिक साझेदारी

* प्रमुख सुरक्षा मंचों में भागीदारी:

  * **QUAD**

  * **SCO**

  * **मालाबार नौसेना अभ्यास**

6. **बहुपक्षीयता और वैश्विक शासन**

भारत बहुपक्षीय संस्थानों में **नियम आधारित विश्व व्यवस्था** का समर्थन करता है:

* **संयुक्त राष्ट्र**: सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता की मांग

* **WTO**, **WHO**, **UNFCCC** में सक्रिय भूमिका

* **दक्षिण-दक्षिण सहयोग** के तहत विकासशील देशों की मदद

7. **प्रवासी भारतीयों से जुड़ाव**

भारत लगभग **3 करोड़ प्रवासी भारतीयों** को एक संसाधन मानता है:

* **विदेश मंत्रालय** में विशेष प्रवासी विभाग

* खाड़ी देशों में कामगारों के अधिकारों की रक्षा

* PIOs/NRIs भारत की कूटनीति में सक्रिय भागीदार

8. **नैतिक और आदर्शवादी कूटनीति**

गांधीवादी विचारों और सभ्यतागत मूल्यों से प्रेरित:

* उपनिवेशवाद और नस्लवाद का विरोध

* परमाणु निरस्त्रीकरण की वकालत (स्वयं परमाणु शक्ति होते हुए भी)

* फिलिस्तीन का समर्थन, दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद विरोध

9. **पड़ोसी पहले नीति(Neighbour First Policy) **

भारत अपने पड़ोसी देशों को प्राथमिकता देता है:

* **नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका, मालदीव, अफगानिस्तान**

* **SAARC** और **BIMSTEC** जैसे मंचों के माध्यम से सहयोग

10. **एक्ट ईस्ट और इंडो-पैसिफिक रणनीति**

भारत की **"लुक ईस्ट" नीति**, अब **"एक्ट ईस्ट" नीति** में बदल गई है:

* ASEAN और पूर्वी एशिया से घनिष्ठ संबंध

* **चीन की आक्रामकता** का संतुलन

* **हिंद-प्रशांत क्षेत्र** में भारत की समुद्री उपस्थिति मजबूत करना

Unit-II

Q. बिस्मार्क को महान कूटनीतिज्ञ क्यों माना जाता है?

ओट्टो वॉन बिस्मार्क, जिसे अक्सर "आयरन चांसलर" कहा जाता है, को आधुनिक इतिहास के सबसे महान कूटनीतिज्ञों में गिना जाता है। उनकी कूटनीतिक कुशलता ने 19वीं सदी में यूरोप के राजनीतिक मानचित्र को पूरी तरह बदल दिया, विशेष रूप से जर्मन एकीकरण को अंजाम देकर और शक्तिशाली यूरोपीय देशों के बीच शांति बनाए रखकर। बिस्मार्क की कूटनीति की विशेषताएँ गहरी राजनीतिक समझ, शक्ति-संतुलन की कला, और व्यावहारिक सोच (realpolitik) पर आधारित थीं।

1. रियलपोलिटिक(व्यवहारिक राजनीति) में माहिर

बिस्मार्क रियलपोलिटिक (Realpolitik) के अग्रदूत थे – एक ऐसी राजनीतिक सोच जिसमें नैतिकता या विचारधारा की जगह राष्ट्रीय हित और शक्ति को प्राथमिकता दी जाती है। वे तात्कालिक लाभ, रणनीति और राजनीतिक यथार्थवाद को समझते थे।

* **उदाहरण:** उन्होंने राष्ट्रवादी भावनाओं का उपयोग जर्मनी को प्रशा के नेतृत्व में एकीकृत करने के लिए किया, लेकिन यह कदम उन्होंने राष्ट्रवाद के आदर्शों के लिए नहीं, बल्कि प्रशा की शक्ति बढ़ाने के लिए उठाया।

2. जर्मन एकीकरण के वास्तुकार

बिस्मार्क की सबसे महान उपलब्धि थी – जर्मनी का एकीकरण। उन्होंने तीन योजनाबद्ध युद्धों और कूटनीतिक चालों के ज़रिए यह लक्ष्य हासिल किया:

* **डेनिश युद्ध (1864):** उन्होंने ऑस्ट्रिया के साथ मिलकर डेनमार्क को हराया और श्लेसविग व होलस्टीन पर नियंत्रण प्राप्त किया।

* **प्रशा-ऑस्ट्रिया युद्ध (1866):** उन्होंने ऑस्ट्रिया के साथ टकराव पैदा किया, उसे हराया लेकिन शांति-समझौते में नरमी बरती ताकि ऑस्ट्रिया भविष्य में दुश्मन न बने।

* **फ्रांको-प्रशियन युद्ध (1870-71):** बिस्मार्क ने फ्रांस को अपमानित करने के लिए 'एम्स डिस्पैच' को बदलकर प्रकाशित किया, जिससे नेपोलियन III ने युद्ध घोषित कर दिया। फ्रांस की हार के बाद दक्षिणी जर्मन राज्यों ने प्रशा के साथ मिलकर जर्मन साम्राज्य की स्थापना की।

ये युद्ध छोटे, रणनीतिक और सटीक रूप से नियोजित थे, जिनका मकसद सिर्फ सैन्य जीत नहीं बल्कि दीर्घकालिक कूटनीतिक लाभ था।

3. फ्रांस को कूटनीतिक रूप से अलग-थलग करना

एकीकरण के बाद बिस्मार्क की मुख्य चिंता थी – नवनिर्मित जर्मन साम्राज्य की सुरक्षा। इसके लिए उन्होंने फ्रांस को अलग-थलग करने की नीति अपनाई:

* **तीन सम्राटों का गठबंधन (1873):** ऑस्ट्रिया-हंगरी और रूस के साथ मिलकर एक गठबंधन बनाया ताकि फ्रांस को

कोई समर्थन न मिले।

* **द्वैध संधि (1879):** ऑस्ट्रिया-हंगरी के साथ गुप्त रक्षात्मक संधि की।

* **त्रिगुट संधि (1882):** इटली को भी इस संधि में शामिल कर लिया गया।

* **रीइंश्योरेंस संधि (1887):** रूस के साथ एक गुप्त संधि की गई जिससे जर्मनी को दो मोर्चों पर युद्ध से बचाया जा सके।

इन सभी संधियों का उद्देश्य था फ्रांस को यूरोपीय राजनीति में अलग-थलग करना और शांति बनाए रखना।

4. बर्लिन कांग्रेस (1878)

बिस्मार्क ने 1878 में बर्लिन कांग्रेस की अध्यक्षता की और खुद को एक "ईमानदार मध्यस्थ" (Honest Broker) के रूप में प्रस्तुत किया:

* उन्होंने रूस, ब्रिटेन, ऑस्ट्रिया और अन्य शक्तियों के बीच संतुलन बनाकर युद्ध को टालने में सफलता पाई।

* ऑस्ट्रिया-हंगरी को बोस्निया-हर्जेगोविना का प्रशासनिक नियंत्रण दिलवाया।

यद्यपि इससे रूस नाराज हुआ, लेकिन बिस्मार्क ने एक बड़े यूरोपीय युद्ध को टाल दिया और जर्मनी की कूटनीतिक स्थिति मजबूत की।

5. शक्ति के माध्यम से शांति

बिस्मार्क का मानना था कि सीमित और नियंत्रित युद्ध कभी-कभी कूटनीतिक लक्ष्यों को साधने के लिए आवश्यक होते हैं:

* एक बार जर्मन साम्राज्य स्थापित हो गया, तब वे शांति के प्रबल समर्थक बन गए।

* उन्होंने उपनिवेशवाद से दूरी बनाए रखी क्योंकि इससे ब्रिटेन और फ्रांस से संघर्ष हो सकता था।

उन्होंने कहा: “मैं ऊब गया हूँ। महान कार्य पूरे हो चुके हैं। जर्मन साम्राज्य बन चुका है।”

6. आंतरिक कूटनीति और कल्चरकांपफ

बिस्मार्क की कूटनीतिक क्षमता केवल अंतरराष्ट्रीय नहीं थी, बल्कि घरेलू मोर्चे पर भी उतनी ही प्रभावशाली थी:

* **कल्चरकांपफ (Kulturkampf):** यह कैथोलिक चर्च के प्रभाव को कम करने की एक नीति थी, ताकि राज्य की सर्वोच्चता बनी रहे।

* **साम्यवाद-विरोधी कानून:** उन्होंने समाजवादियों को दबाने के लिए कड़े कानून बनाए, लेकिन साथ ही दुनिया की पहली सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ शुरू कीं – स्वास्थ्य बीमा, पेंशन और दुर्घटना बीमा।

7. सीमाएँ और पतन

हालाँकि बिस्मार्क की नीति प्रभावशाली थी, लेकिन यह पूरी तरह उन्हीं पर निर्भर थी। उन्होंने अपने बाद के लिए कोई मजबूत उत्तराधिकारी नहीं बनाया। 1890 में कैसर विल्हेम द्वितीय द्वारा उन्हें हटा दिया गया।

* उनके बाद रूस से रीइंश्योरेंस संधि समाप्त कर दी गई, जिससे रशिया फ्रांस के साथ जुड़ गया – ठीक वही स्थिति जिसे बिस्मार्क टालना चाहते थे।

**निष्कर्ष:

बिस्मार्क को महान कूटनीतिज्ञ इसलिए माना जाता है क्योंकि:

* उन्होंने युद्ध और कूटनीति के मेल से जर्मनी का एकीकरण किया।

* एकीकृत जर्मनी को स्थिर और शक्तिशाली बनाया।

* यूरोप में दो दशकों तक शांति बनाए रखी।

* एक जटिल परंतु प्रभावी संधि-प्रणाली बनाई।

* शक्ति, समझ और व्यवहारिकता के अद्भुत संतुलन के साथ राजनयिक निर्णय लिए।

* अंतरराष्ट्रीय और घरेलू दोनों मोर्चों पर कुशल रणनीतिकार साबित हुए।

Q. कार्डिनल रिचल्यू का राजनय के सिद्धान्त व व्यवहार में क्या योगदान है? (Discuss the contribution of Cardinal Richelieu to the theory and practice of diplomacy.)

उत्तर-फ्राँसीसी राजनय को उच्चतम शिखर पर ले जाने वाले व्यक्तियों में प्रमुख कार्डिनल व्यक्ति रिचलू का नाम उल्लेख है। वह अपने समय का सर्वोच्च यथार्थवादी राजनयज्ञ था। उसमें कार्डिनल और राजनयज्ञ दोनों के गुणों का समन्वय था। उसका वास्तविक नाम अरमाण्ड की रिचलू था परन्तु कार्डिनल बनने के पश्चात् उसे कार्डिनल रिचलू कहा जाने लगा।

कार्डिनल रिचलू का जन्म फ्रांस के एक सामंतीय परिवार में सन् 1585 ई. में हुआ था। चर्च के संरक्षण में उसे धार्मिक शिक्षा दी गई। 1606 ई. में 21 वर्ष की आयु में ही, उसकी योग्यता को देखते हुए, उसे विशप - बना दिया गया। उसके कार्य और योग्यता से प्रभावित होकर स्टेट जनरल ने मेरी डी मैडिसी के दरबार में उसे ससम्मान बुलाकर कार्डिनल के पद पर नियुक्त कर दिया। व्यक्ति अपने गुणों के आधार उन्नति करता है। कार्डिनल रिचलू में कुछ ऐसे गुण थे कि वह निरन्तर उन्नति करता गया और शनैः शनैः उन्नति के शिखर पर पहुँच गया।

कार्डिनल बनने तक उत्तका जीवन-क्रम प्रायः धर्म तथा चर्च तक ही सीमित था, परन्तु अब उसके राजनैतिक जीवन का शुभारम्भ हुआ। सर्वप्रथम वह राजमाता मैडिसी का मुख्य परामर्शदाता बना और बाद में उत्तकी राजभक्ति और देशभक्ति से प्रभावित होकर लुई तेरहवें ने उसे अपना मुख्य सलाहकार नियुक्त किया। मार्ग-दर्शन के लिए सम्राट् उसी से सलाह करते थे। यदि ध्यान से देखा जाए तो मुख्य परामदर्शदाता के पद पर नियुक्ति के पश्चात् 18 वर्षों तक कार्डिनल रिचलू ही फ्राँस का वास्तविक रूप से शासन चलाता रहा उसने 1624 ई. में सम्राट् लुई को वचन दिया था, "मैं वादा करता हूँ कि आपकी खुशी के लिए मैं अपनी पूरी क्षमता एवं शक्ति ह्यगनोट्स को तबाह (नष्ट) करने में, बड़े सामंतों का सम्मान समाप्त करने में, जनता में कर्तव्यपरायणता जागृत करने में लगा दूंगा।" रिचलू ने असीम राजभक्ति और देशभक्ति से राजा और फ्राँस की सेवा की। कुछ बड़े सामंत और राजमाता मैडिसी रिचलू के बढ़ते प्रभाव से चितिंत होने लगे और रिचलू का विरोध करने लगे। इनमें सबसे मुखर स्वर राजमाता का था। फ्रांस के हित को देखते हुए रिचलू ने राजमाता मैडिसी को राजसत्ता से हटाकर पूर्णतः प्रभावहीन कर दिया। यों तो लुई तेरहवाँ भी, वस्तुतः, मन से रिचलू को पसन्द नहीं करता था, परन्तु उसकी राजभक्ति और देशभक्ति ने उसे राजा का विश्वासपात्र बनाए रखा और हालाँकि उनकी कूटनीति हमेशा नैतिक या पारदर्शी नहीं थी, लेकिन वह अत्यंत प्रभावी अवश्य थी। उनके बाद यूरोप जिस असंतुलन में फंसा, उससे यह स्पष्ट होता है कि बिस्मार्क की कूटनीतिक व्यवस्था कितनी कुशल और दूरदर्शी थी। सम्राट् उसे उसके पद से नहीं हटा सका। वस्तुतः सम्राट् राजपरिवार और सामंतों के विरोध के होते हुए भी रिचलू को पद से अलग क्यों नहीं कर पाया, इसके कुछ कारण थे-

(i) विलासप्रिय होने के कारण सम्राट् लुई 13वां राजसत्ता का समस्त भार रिचलू के भरोसे छोड़कर निश्चिंत हो गया था। उसे जनता और शासन की चिन्ता नहीं थी।

(ii) शासन के प्रत्येक क्षेत्र में रिचलू का अधिकार था और शासन की समस्त नीतियों का वही कर्णधार था। सम्राट् उसकी नीतियों को आँख बन्द करके समर्थन करता था।

(iii) फ्रांस को जितना गौरव उस युग में प्राप्त हुआ, देश में जितना अधिक विकास हुआ, उसका श्रेय रिचलू को ही जाता है।

(iv) रिचलू की राजभक्ति निस्संदिग्ध थी और देशप्रेम निर्विवाद था।

(v) रिचलू की योग्यता, क्षमता, कर्तव्यपरायणता अद्विितीय थी।

(vi) रिचलू राजतंत्र की तुलना में निरंकुश राज्यतंत्र को महत्त्व देता था।

रिचलू की हार्दिक इच्छा थी कि वैदेशिक क्षेत्र में, विशेषतः यूरोप में, फ्रांस का गौरव और वैभव सर्वोच्च होना चाहिए। इसके लिए जनता के हितों का बलिदान भी करना पड़े, तो उसे कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि समय और परिस्थितियों के अनुसार यथार्थवादी होना चाहिए। वह राष्ट्रों के मध्य संबंधों को सुधारने के लिए वार्ताओं पर बल देता था। वार्ताओं के द्वारा संबंध-सुधार उसके राजनय का अंग था। रिचलू प्रथम राजनय था, जिसने विश्व को शक्ति-संतुलन का सिद्धान्त प्रदान किया। इस सिद्धान्त से यूरोप में शान्ति बनी रही। उसके जीवनकाल में राजनय संबंधी अनेक सुधार किए। रिचलू ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल टेस्टामेंट एण्ड मेमोरीज़' (Political Testament and Memories) में जिन कुछ स्थायी मूल्यों के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया वे निम्नलिखित हैं-

1. राष्ट्रों के मध्य स्थायी सुखद संबंधों के लिए वार्ताएँ अनिवार्य हैं। निकलसन का कथन है, "इसने अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल टेस्टामेंट एण्ड मेमोरीज़' में एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि राजनय का उद्देश्य स्थायी और ठोस संबंधों का निर्माण है न कि प्रासंगिक अयवा अवसरवादी व्यवस्वा।" रिचलू के अनुसार वार्ता की असफलता पर भी दूसरे के विचारों एवं दृष्टिकोण से अवगत होने के लिए वातएँ निरन्तर होती रहनी चाहिए। क्षणिक लाभ-हानि की उपेक्षा कर स्थायित्व पर बल देना चाहिए।

2. नीतियों का आधार राष्ट्रहित होना चाहिए, क्योंकि वही प्रधान एवं शाश्वत है और वह व्यक्ति के निजी हितों से ऊपर है। येयर (Thyer) के शब्दों में रिचलू के अनुसार, "राष्ट्रीय नीतियाँ ठण्डे दिमाग से सोचे गए राष्ट्रीय हितों पर आधारित होनी चाहिए न कि वंशीय अथवा भावुक आधारों पर।" मित्रों के चुनाव का आधार निजी पसन्द न होकर स्थायित्व है। राष्ट्रहित में घोर शत्रु देश से भी संधि करने में हिचकिचाना नहीं चाहिए।

3. प्रत्येक राष्ट्र की आंतरिक, वैदेशिक अनेक प्रकार की नीतियाँ होती हैं, परन्तु उनकी सफलता के लिए जनमत का अर्थात् राष्ट्र का समर्थन प्राप्त हो। रिचलू इससे सहमत था। इसके लिए उसने प्रचार-तंत्र पर बल दिया। जनमत जागरण के हेतु पर्चे आदि छपवा कर वितरित किए जा सकते हैं। वह स्वयं इश्तहार निकालता था, उन्हें वह "मेरे छोटे पर्चे (My little leaflet)" कहता था।

4. सभ्य और शिष्ट भाषा के कम-से-कम शब्दों में सही अर्थ को व्यक्त करना और अपने ध्येय के अनुकूल भाषा-रचना को महत्त्व देना कुशल राजनयज्ञ की विशेषता है। इससे संधि-वार्ता में निश्चितता आती है। अस्पष्ट भाषा में किया गया समझौता भंग भी हो सकता है और न्यूनाधिक उसे गलत समझे जाने के अवसर बढ़ जाते हैं। रिचलू के अनुसार राजनय में निश्चितता रहना अनिवार्य है।

5. रिचलू का मत था कि संधि दो राज्यों के मध्य स्थायी संबंध बनाने का महत्त्वपूर्ण साधन है। अतः उसे एक पवित्र प्रतिज्ञा-पत्र (दस्तावेज) मानना चाहिए। संधि करने से पूर्व पूर्ण सावधानी, विचार-विमर्श, तर्क-वितर्क आदि कर लेना हितकर है। एक बार संधि पर हस्ताक्षर हो जाने पर संधि के नियमों का अनिवार्य रूप से पालन किया जाना चाहिए। रिचलू के मत में किसी भी राज्य के साथ सन्धि उस राज्य के भौगोलिक एवं सामरिक महत्त्व के आधार पर करनी उपयोगी होती है, सत्यनिष्ठा, धर्म आदि

का विशेष महत्त्व नहीं है। संधि का महत्त्व व्यावहारिक दृष्टि से होता है, नैतिकता, पवित्रता का आधार नगण्य है। राजदूतों अथवा संधिकर्ताओं को अपने राज्य के निर्देशों के बाहर जाकर कुछ भी नहीं करना चाहिए, अन्यया उनकी विश्वसनीयता कम हो जाती है।

6. अनेक राज्यों में नीति का निर्देशन एक मंत्रालय करता है और राजदूत दूसरे मंत्रालय से नियंत्रित तथा निर्देशित होता है। रिचलू इससे सहमत नहीं था। उसके मत में नीति-निर्देशन और राजदूत का नियंत्रण एक ही मंत्रालय में केन्द्रित होना चाहिए। ऐसा न होने पर प्रायः समझौता वार्ताएँ अस्पष्ट और प्रभावहीन रहती हैं और उनमें विलम्ब भी होता है। संधि-वार्ता में इस कारण से दोनों पक्षों में भ्रम पड़ने की अथवा वार्ता-भंग होने की आशंका होने पर कोई भी मंत्रालय उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करता। अतः 'रिचलू आदेश की एकता' (Unity of Commands) में विश्वास करता था। रिचलू कोमल और शिष्ट भाषा के प्रयोग पर बल देता था। उत्तके अनुसार वाणी के घावों की तुलना में तलवारों के घाव शीघ्र एवं सरलता से भर जाते हैं। (Wounds inflicated by the swords are more easily healed than those inflicted by the tongue.) रिचलू ने राज्य तथा राजनय के विषय में जो आदर्श सिद्धान्त निर्धारित किए हैं, वे संक्षेप में निम्नलिखित हैं-

(i) राज्य के विषय में गोपनीय अनिवार्य तत्त्व हैं।

(ii) राज्य के विरुद्ध किए गए अपराधों का निर्णय करने में दया भाव का कोई स्थान नहीं है।

(iii) सुन्दर शब्दों में अनुचित (गलत) रूप से प्रस्तुत किए गए मामले स्वेच्छा से सत्य रूप में स्वीकार किए जाते हैं।

(iv) राज्य के लिए कार्य करने वालों को विस्तारों का अनुसरण करना चाहिए। कुत्ते भींकते रहते हैं, तथापि वे सबके समान चमकते रहते हैं, परन्तु अपने मार्ग पर ही घूमते रहते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कार्डिनल रिचलू राजनय में निपुण, देशप्रेमी, राजभक्त, दूद्रष्टा तथा यथार्थवादी राजनेता था। उसके प्रयास से फ्रांस का बहुमुखी विकास हुआ। राजनय के जिन सिद्धान्तों का उसने प्रतिपादन किया, वे आज भी अनुकरणीय हैं। उसने यूरोप की राजनीति पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

6. के. एम. पन्निकर द्वारा कूटनीति के सिद्धांत व व्यवहार में योगदान का वर्णन करें।

I. के. एम. पन्निकर का कूटनीति के सिद्धांत में योगदान

1. **यूरोपीय केंद्रित कूटनीति की आलोचना:**

* पन्निकर ने पश्चिमी देशों द्वारा स्थापित कूटनीतिक मॉडल की आलोचना की जो शक्ति संतुलन, साम्राज्यवाद और छल-कपट पर आधारित था।

* उन्होंने कहा कि एशियाई सभ्यताओं की समृद्ध कूटनीतिक परंपराएं हैं, जिन्हें पश्चिमी इतिहासकारों ने अनदेखा किया।

2. **एशियाई कूटनीतिक परंपराओं की मान्यता:**

* पन्निकर ने भारत, चीन और फारस जैसी सभ्यताओं की प्राचीन कूटनीतिक परंपराओं को रेखांकित किया।

* उन्होंने कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* जैसे ग्रंथों का उल्लेख किया जिसमें गठबंधन, गुप्तचर नीति और वार्ता की विस्तृत विधियाँ बताई गई हैं।

3. **सभ्यतागत और सांस्कृतिक दृष्टिकोण:**

* उनका मानना था कि कूटनीति को प्रत्येक देश की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुसार अपनाना चाहिए।

* एशियाई सभ्यताओं में नैतिकता, आध्यात्मिकता और सहअस्तित्व की भावना प्रबल है, जिसे कूटनीति में शामिल किया जाना चाहिए।

4. **नैतिक और आदर्शवादी कूटनीति पर बल:**

* उन्होंने केवल शक्ति और चालाकी पर आधारित कूटनीति को अस्वीकार किया।

* उनके अनुसार, कूटनीति का उद्देश्य न्याय, शांति और आपसी सम्मान होना चाहिए, न कि केवल राजनीतिक लाभ।

5. **एशियाई एकता और सहयोग का समर्थन:**

* पन्निकर ने एशियाई देशों को एकजुट होकर साम्राज्यवादी हस्तक्षेप का विरोध करने का आग्रह किया।

* उनका मानना था कि कूटनीति का उपयोग क्षेत्रीय सहयोग और एशिया की साझा पहचान को मजबूत करने के लिए होना चाहिए।

II. के. एम. पन्निकर का कूटनीति के व्यवहार में योगदान

6. **चीन में भारत के राजदूत (1948–1952):**

* कम्युनिस्ट क्रांति के बाद जब चीन में सत्ता परिवर्तन हुआ, उस समय पन्निकर वहाँ भारत के राजदूत थे।

* उन्होंने भारत सरकार को शीघ्रता से नई सरकार को मान्यता देने की सलाह दी, जिससे भारत को कूटनीतिक बढ़त मिली।

7. **शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का समर्थन:**

* उन्होंने पंचशील सिद्धांतों की नींव रखी, जो बाद में 1954 में भारत-चीन समझौते के रूप में सामने आया।

* पंचशील के पांच सिद्धांत — संप्रभुता का सम्मान, आक्रामकता से परहेज, हस्तक्षेप न करना, समानता और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व — आज भी भारत की विदेश नीति के आधार हैं।

8. **संवाद और सहयोग पर बल:**

* उन्होंने चीन और अन्य देशों के साथ वैचारिक टकराव के बजाय संवाद व कूटनीतिक जुड़ाव को प्राथमिकता दी।

* उनकी सलाह थी कि भारत को किसी भी देश से संबंध उसके ऐतिहासिक व राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में देखने चाहिए।

9. **सांस्कृतिक और बौद्धिक कूटनीति:**

* पन्निकर का मानना था कि भारत की संस्कृति, दर्शन और सभ्यता ही उसकी सबसे बड़ी कूटनीतिक ताकत है।

* उन्होंने सांस्कृतिक आदान-प्रदान और वैचारिक संवाद को कूटनीति का हिस्सा बनाने पर ज़ोर दिया।

10. **भारत की उपनिवेशोत्तर पहचान का निर्माण:**

* उन्होंने भारत की विदेश नीति को उसकी सभ्यतागत पहचान — शांति, स्वतंत्रता और सहयोग — के अनुरूप आकार देने में

मदद की।

* उन्होंने दिखाया कि भारत पश्चिमी मॉडल को अपनाए बिना भी एक सशक्त कूटनीति विकसित कर सकता है।

III. विरासत और समकालीन प्रासंगिकता

11. **इतिहास और कूटनीति का समन्वय:**

* इतिहासकार होने के नाते पन्निकर ने कूटनीति को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से समझाया और उसे एक गहन आयाम प्रदान किया।

* उनका मानना था कि अतीत को समझे बिना वर्तमान कूटनीतिक रणनीतियाँ अधूरी रहेंगी।

12. **नेहरू की विदेश नीति पर प्रभाव:**

* पंडित नेहरू के साथ उनके करीबी संबंधों के कारण उनकी विचारधारा भारत की प्रारंभिक विदेश नीति में झलकती है।

* गुटनिरपेक्षता, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व और सांस्कृतिक कूटनीति उनके विचारों से प्रेरित थीं।

13. **भारतीय कूटनीति के लिए प्रेरणा:**

* उन्होंने भारतीय राजनयिकों को केवल रणनीतिक नहीं, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने की प्रेरणा दी।

* उनके लेख और विचार आज भी अंतरराष्ट्रीय संबंधों और विदेश नीति के अध्ययन में महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

निष्कर्ष:

के. एम. पन्निकर ने कूटनीति को केवल सत्ता और लाभ का साधन न मानकर, उसे नैतिकता, संस्कृति और सभ्यता से जोड़कर एक गहरी समझ प्रदान की। उन्होंने भारत और एशिया के लिए एक स्वतंत्र, आदर्शवादी और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध कूटनीतिक दृष्टिकोण का मार्ग प्रशस्त किया, जो आज भी प्रासंगिक है।

Unit-III

Q.7. विश्व शांति की स्थापना में सुरक्षा परिषद की भूमिका बताइए।

उत्तर- सुरक्षा-परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ का सबसे अधिक शक्तिशाली तथा महत्त्वपूर्ण अंग हैं। यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यकारिणी है।

पामर तथा पारकिंस के अनुसार सुरक्षा परिषद् "**संयुक्त राष्ट्रसंघ की कुंजी**" (Key Organ of the UNO) तथा ई. पी. चेज के अनुसार "**सुरक्षा-परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ का हृदय** है।" (The Security Council is the heart of the UNO) सुरक्षा-परिषद् को ही विश्व-शाति एवं सुरक्षा का पहरेदार माना जाता है। यद्यपि सुरक्षा-परिषद् महासभा की अपेक्षा एक बहुत ही छोटा निकाय है, परन्तु इसकी शक्तियां महासभा से बहुत अधिक हैं। सुरक्षा-परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यपालिका है और इसलिए डेविड शूमैन ने इसे "विश्व का पुलिसमैन" कहा है। "संकट का समय है अथवा शांति का, संयुक्त राष्ट्रसंघ के दूसरे अंग कार्य कर रहे हों या न कर रहे हों, कोई-सा वर्ष, कोई समय हो या

कैसा ही मौसम हो, सुरक्षा-परिषद् अपना कार्य करती ही रहती है।"

सुरक्षा-परिषद् का गठन (Organisation of Security Council)

सुरक्षा-परिषद् का गठन संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यकारी तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में किया गया है और अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा का मुख्य दायित्व इसी पर है। चार्टर की मूल व्यवस्था के अनुसार सुरक्षा-परिषद् के सदस्यों की कुल संख्या 11 निश्चित की गई थी 5 स्थायी तथा 6 अस्थायी सदस्य, परन्तु दिसम्बर 1965 में चार्टर में किये गये संशोधन के अनुसार सदस्यों की संख्या 11 से बढ़ाकर 15 कर दी गई है। अब इसमें 5 स्थायी सदस्य तथा 10 अस्थायी सदस्य है। इसके स्थायी सदस्य हैं संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा चीन। सुरक्षा-परिषद् के 10 अस्थायी सदस्य महासभा के द्वारा चुने जाएंगे और उनका चुनाव करते समय महासभा दो बातों का ध्यान रखेगी-

(i) अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को बनाये रखने तथा संघ के अन्य प्रयोजनों की पूर्ति में संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों का योगदान, तथा

(ii) समान भौगोलिक वितरण का ध्यान।

व्यवहार में सुरक्षा-परिषद् के 10 अस्थायी सदस्यों में से 5 स्थान अफ्रीका तथा एशिया के राज्यों को, दो स्थान लैटिन अमेरिका के राज्यों को, दो स्थान पश्चिमी यूरोपियन राज्यों को तथा शेष एक स्थान पूर्वी यूरोप के राज्यों को दिया जाता है।'

चार्टर के अनुसार सुरक्षा-परिषद् के अस्थायी सदस्यों का चुनाव महासभा द्वारा दो वर्ष की अवधि के लिए किया जाएगा तथा रिटायर होने वाला सदस्य तुरन्त पुनः चुनाव के लिए खड़ा नहीं हो सकता।

अधिवेशन (Sessions)-सुरक्षा-परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यकारिणी है, अतः यह लगातार कार्य करती रहती है। इस कारण से सुरक्षा-परिषद् के प्रत्येक सदस्य का एक प्रतिनिधि स्थायी रूप से संयुक्त राष्ट्रसंघ के मुख्यालय में उपस्थित रहता है। सुरक्षा-परिषद् की दो बैठकों के बीच का अधिक-से-अधिक समय 14 दिन हो सकता है और इसके सभी सदस्य बैठक में उपस्थित होने के लिए तैयार रहते हैं। जैसे ही विश्व-शांति को कोई खतरा उत्पन्न हो, परिषद् की बैठक बुला ली जाती है। इसकी बैठकें प्रायः संघ के मुख्यालय न्यूयार्क (New York) में होती हैं, परन्तु यदि कार्य करने में सुविधा हो, तो इसकी बैठकें अन्य स्थानों पर भी बुलाई जा सकती हैं। विशेष परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर इसकी आपातकालीन बैठक भी बुलाई जा सकती है।

सुरक्षा-परिषद् अपनी कार्य-विधि नियमों का निर्माण स्वयं करती है।

सभापति (President)-चार्टर के अनुच्छेद 32 के अनुसार सुरक्षा-परिषद् अपने सभापति के निर्वाचन की पद्धति स्वयं निश्चित करेगी। दूसरे शब्दों में, चार्टर में निर्वाचन पद्धति की व्यवस्था नहीं की गई है। सुरक्षा-परिषद् की कार्य-विधि के नियमानुसार सुरक्षा-परिषद् का अध्यक्ष इसके सदस्यों में से सदस्य राज्यों के नाम के प्रथम अक्षर (Alphabetical order) के अनुसार एक महीने के लिए निर्वाचित किया जाता है। यद्यपि अध्यक्ष का पद कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता तथापि मतदान से पूर्व सदस्य राज्यों तथा विवाद ग्रस्त पक्षों से अनौपचारिक वार्ताताओं में उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है।

सहायक अंग (Subsidiary Organs) — यद्यपि सुरक्षा-परिषद् एक छोटा निकाय है और इसके अधिकांश कार्य

समस्त सदस्यों द्वारा सम्पन्न होते हैं, तथापि अपने कार्य को अधिक सुचारु रूप से करने के लिए यह सहायक अंगों समितियों तथा आयोगों की स्थापना कर सकती है। सुरक्षा-परिषद् द्वारा निम्न समितियों एवं आयोगों की स्थापना की गई है।

1. सैनिक स्टाफ समिति (Military Staff Committee)- चार्टर के अनुच्छेद 47 के अनुसार 'सैनिक स्टाफ समिति' की स्थापना की जाएगी। यह समिति अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा सम्बन्धी परिषद् की सैनिक आवश्यकताएं, उसके अधीन सेना का प्रयोग और उनकी कमान, शस्त्रों का नियन्त्रण तथा सम्भावित निःशस्त्रीकरण आदि प्रश्नों पर परामर्श तथा सहायता देगी। इस समिति में पांच स्थायी सदस्यों के चीफ ऑफ स्टाफ (Chief of Staff) अथवा उनके प्रतिनिधि होते हैं। इस समिति का दायित्व सुरक्षा-परिषद् के अधीन सशस्त्र सेनाओं पर नियन्त्रण करना तथा उनको निर्देश देना है। परन्तु व्यवहार में स्थायी सदस्यों के आपसी मतभेद के कारण यह समिति अपना कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकी है।

2. विशेषज्ञ समिति (Committee of Experts)-इस समिति में परिषद् के सभी सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता है। इसमें सदस्य राज्यों के विधि विशेषज्ञ होते हैं। यह समिति चार्टर की व्याख्या सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करती है। इसका मुख्य कार्य सुरक्षा-परिषद् की कार्य-विधि के नियम बनाना है।

3. नए सदस्यों के प्रवेश से सम्बन्धित समिति (Committee on the Admission of New Members) - इस समिति में सुरक्षा-परिषद् के सभी सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं। यह समिति संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता के लिए दिये गए आवेदन-पत्रों के सम्बन्ध में परिषद् को परामर्श देती है।

4. आयोग (Commission) - सुरक्षा-परिषद् द्वारा निम्नलिखित आयोगों का भी गठन किया गया है-

(i) परम्परागत शस्त्रों पर आयोग (Commission on Conventional Armament)- इस

आयोग की स्थापना सुरक्षा-परिषद् द्वारा सन् 1947 में की गई थी। इस आयोग का मुख्य कार्य परम्परागत शस्त्रों पर नियन्त्रण तथा उन्हें कम करने हेतु सुझाव देना है।

(ii) अणु शक्ति आयोग (Atomic Energy Commission) इस आयोग का गठन सन् 1946 में किया गया था। इसे अपने कार्यों के लिए सुरक्षा-परिषद् के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया है।

(iii) निःशस्त्रीकरण आयोग (Disarmament Commission) - इस आयोग की स्थापना सुरक्षा-परिषद् द्वारा सन् 1952 में की गई थी। सुरक्षा-परिषद् के सभी सदस्य इसके सदस्य हैं। सन् 1958 में संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य इस आयोग के सदस्य बना दिये गए।

तदर्थ निकाय (Adhoc Bodies)-उपर्युक्त समितियों अथवा आयोगों के अतिरिक्त सुरक्षा-परिषद् द्वारा समय-समय पर विशेष समितियां अथवा आयोगों की भी स्थापना की जाती है। उदाहरणास्वरूप, इण्डोनेशियां के प्रश्न पर 'सत्प्रयास समिति' (Committee on Good Offices) भारत तथा पाकिस्तान के बीच युद्ध-विराम के लिए आयोग (Indo-Pak Truce Commission) तथा फिलिस्तीन के लिए युद्ध विराम आयोग (Palestine Truce Commission) स्थापित किये गए थे।

सुरक्षा-परिषद् में मतदान पद्धति (Voting System in the Security Council)

सुरक्षा-परिषद् की मतदान पद्धति बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका वर्णन चार्टर के अनुच्छेद 27 के अन्तर्गत किया गया है।

सुरक्षा-परिषद् के प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार है। ("Each member of the Secuirty Council shall have one vote". - Article 27 of U.N. Charter)

सुरक्षा-परिषद् में प्रस्तुत होने वाले प्रस्तावों को दो श्रेणियों में बांटा गया है

(i) प्रक्रिया सम्बन्धी मामले (Procedural matters) तथा

(ii) सभी अन्य मामले (All others or important matters)

"प्रक्रिया सम्बन्धी मामलों पर निर्णय सुरक्षा-परिषद् के द्वारा सदस्यों को स्वीकारात्मक मत से लिए जाएंगे, अन्य सभी मामलों के निर्णय के लिए 15 में से 9 मतों का पक्ष में होना आवश्यक है।

जिनमें सभी स्थायी सदस्यों के मतों का शामिल होना अनिवार्य है।"

प्रक्रिया सम्बन्धी मामलों के अन्तर्गत ये विषय आते हैं-सुरक्षा-परिषद् की बैठक के समय अथवा स्थान का निर्णय, इसके सहायक अंगों की स्थापना, कार्य विधि सम्बन्धी नियम, सदस्यों को बैठकों में शामिल होने के लिए निमन्त्रित करना, आदि। अन्य (महत्त्वपूर्ण) विषयों के सम्बन्ध में निर्णय तभी सम्भव होता है जब सभी स्थायी सदस्य उसके पक्ष में हों और उनके अतिरिक्त कम-से-कम चार अन्य सदस्य उसका समर्थन करें। यदि एक भी स्थायी सदस्य अपना मत विपक्ष में देता है, तो वह प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है। स्थायी सदस्यों के इस अधिकार कां निषेधाधिकार (Veto) के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि कोई सदस्य बैठक अथवा मतदान का बहिष्कार करे, तो वह निषेधाधिकार नहीं माना जाता।

सुरक्षा-परिषद् की इस मतदान पद्धति से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को सफल वनाने के लिए सभी स्थायी सदस्यों को सहमत होना आवश्यक है। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि यदि सुरक्षा-परिषद् गम्भीर गतिरोध के कारण कोई कार्यवाही नहीं कर पाती अथवा आक्रमण को रोकने के लिए निषेधाधिकार के कारण अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाती, तो महासभा अपने दो-तिहाई बहुमत से अपनी सिफारिश करके सुरक्षा-परिषद् को कार्यवाही करने के लिए बाध्य कर सकती है।

सुरक्षा-परिषद् की शक्तियां एवं कार्य (Powers and Functions of the Security Council)

सुरक्षा-परिषद् की शक्तियों का विस्तृत वर्णन अध्याय 6 (अनुच्छेद 33 से 38 तक) अध्याय 7 (अनुच्छेद 39 से 51 तक) अध्याय 8 (अनुच्छेद 52 से 54 तक) तथा अध्याय 12 (अनुच्छेद 75 से 78 तक) में किया गया है। सुरक्षा-परिषद् की मुख्य शक्तियां निम्नलिखित हैं :-

1. विवादों का शांतिपूर्ण समाधान (Pacific Settlement of Disputes) सुरक्षा-परिषद् का मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान है। चार्टर के अनुच्छेद 33 में यह कहा गया है कि यदि किसी विवाद के बने रहने से अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को खतरा उत्पन्न होने की सम्भावना हो, तो सम्बन्धित सभी पक्ष पहले उस विवाद को बातचीत (Negotiation) पूछताछ (Enquiry) मध्यस्थता (Mediation) समझौता (Conciliation) पंच-निर्णय (Arbitration) न्यायिक समझौता (Judicial Settlement) क्षेत्रीय अभिकरणों (Regional Agencies) व्यवस्थाओं (Arrangements) या अपनी पसन्द के अन्य शांतिपूर्ण साधनों से सुलझाने का प्रयत्न करेंगे। सुरक्षा-परिषद् भी, यदि आवश्यक समझे, तो दोनों पक्षों को शांतिपूर्ण उपर्युक्त विधियों से विवाद को निपटाने के लिए कह सकती है।

अनुच्छेद 34 के अनुसार सुरक्षा-परिषद् किसी ऐसे विवाद या परिस्थिति की जांच कर सकती है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय विवाद उत्पन्न होने की सम्भावना हो। अनुच्छेद 35 के अनुसार, "सुरक्षा-परिषद् स्वयं अथवा संयुक्त राष्ट्रसंघ का कोई भी सदस्य अथवा कोई अन्य देश (जो संघ का सदस्य न हो) जो झगड़े से सम्बन्धित हो, सुरक्षा-परिषद् अथवा महासभा का ध्यान आकर्षित कर सकता है कि समस्या के जारी रहने से अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो सकता है। परिषद् इस बात को भी निश्चित करती है कि वह विवाद अथवा स्थिति यदि जारी रहे, तो उससे विश्व-शांति अथवा सुरक्षा को कोई खतरा पैदा हो सकता है या नहीं। ऐसे विवाद अथवा इस प्रकार की कोई स्थिति पैदा होने पर अनुच्छेद 36 के अनुसार सुरक्षा-परिषद् किसी भी समय उसके लिए उचित कार्यवाही करने या उसके समाधान के उपायों की सिफारिश कर सकती है। "इस अनुच्छेद के अन्तर्गत सिफारिश करते समय परिषद् को इस बात का भी विचार करना चाहिए कि विवादी पक्षों द्वारा कानूनी विवादों को न्यायालय के विधान के उपबन्धों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सामने पेश किया जाए।"

सुरक्षा परिषद् द्वारा की गई कुछ बाध्यकारी (सैनिक) कार्यवाहियाँ-

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की दृष्टि से परिषद् ने कतिपय अवसरों पर जी वाध्यकारी कार्यवाहियाँ की, उनमें से कुछेक का उल्लेख निम्नलिखित है-

(i) कोरिया संघर्ष-परिषद् को शान्ति स्थापना के सम्बन्ध में सैनिक कार्यवाही करने का प्रथम अवसर कोरिया-संघर्ष में मिला। जून 1950 में उत्तरी कोरिया द्वारा दक्षिण कोरिया पर आक्रमण कर दिया गया। संयुक्त राज्य अमेरिकन सुरक्षा परिषद् में कोरिया का प्रश्न रखा। परिषद् द्वारा आदेश दिया गया कि युद्ध बन्द कर दिया जाए और उत्तरी कोरिया की फीजें 38° उत्तर में वापस चली जाएँ। उत्तरी कोरिया द्वारा आदेश की अवहेलना करने पर संयुक्त राज्य अमेरिका ने सुरक्षा परिषद् में उत्तरी कोरिया के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही का प्रस्ताव रखा। परिषद् में यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। कुछ राज्यों ने संघ को अपनी सेनाएँ भी प्रदान कीं और संयुक्त राज्य अमेरिका इन सेनाओं के साथ दक्षिणी कोरिया की सहायतार्थ पहुंच गया। उत्तरी कोरिया के विरुद्ध कोरिया युद्ध संयुक्त राष्ट्रसंघ का युद्ध बन गया। आलोचकों का यह मत रहा कि व्यवहारतः कोरिया में की गई कार्यवाही संयुक्त राष्ट्रसंघ के नाम पर मुख्यतः अमेरिकी कार्यवाही थी। विजय-पराजय के झूले में झूलते हुए अन्ततोगत्वा संयुक्त राष्ट्रसंघीय सेनाओं को सफलता मिली और पर्याप्त विचार-विमर्श के उपरान्त युद्ध विराम हो गया।

(ii) कांगो- कांगो (1960-64) में संयुक्त राष्ट्रसंघीय फौजें बाध्यकारी कार्यवाही के रूप में नहीं बल्कि बेल्जियम फौजों के लौट जाने के बाद भी इसीलिए बनी रहीं कि कांगो का गृह-युद्ध विश्व-शान्ति के लिए कहीं खतरा न बन जाए। सुरक्षा परिषद् की इस कार्यवाही के संचालन, देखभाल आदि का उत्तरदायित्व महासचिव पर पड़ा। वास्तव में सम्पूर्ण कार्यवाही चार्टर के अनुच्छेद 7 के अनुसार बाध्यकारी नहीं थी और न ही तत्सम्बन्धी प्रक्रियात्मक, औपचारिक एवं आवश्यक व्यवस्थाओं का पालन ही किया गया था। फिर भी 1962-63 में कांगो क्षेत्र के नियंत्रण के लिए संघीय सेना द्वारा की गई सैनिक कार्यवाही वाध्यकारी कदम था। कांगो में सुरक्षा-परिषद् द्वारा जो कार्यवाही की गई, वह चार्टर के अध्याय 7 के अनुसार भी अथवा नहीं, यह प्रश्न आज भी विवादास्पद है। जो भी हो, संघीय कार्यवाही ने कांगो को कोरिया बनने से बचा लिया। यदि संघीय फौजें वहां न होतीं तो कांगो साम्यवादियों एवं पश्चिमी शक्तियों का सशस्त्र संघर्ष-स्थल बन गया होता।

(iii) रोडेशिया-रोडेशिया (1965-66) द्वारा ब्रिटेन से एकतरफा स्वतन्त्र होने के निश्चय से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए कार्यवाही करते हुए सुरक्षा परिषद् ने दिसम्बर, 1966 के अपने तीसरे प्रस्ताव में संयुक्त राष्ट्र संघ के इतिहास में

पहली बार प्रादेशिक अनुशस्तियाँ लगायीं। रोडेशिया द्वारा एकतरफा स्वतन्त्रता की घोषणा को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए खतरा माना गया। आलोचकों के अनुसार रोडेशिया के मामले में भी कोरिया के समान ही चार्टर के अनुच्छेद 39-43 के अनुसार कार्य हुआ और साथ ही यह प्रवृत्ति भी स्पष्ट हो गई कि सुरक्षा परिषद् के अधिकार-क्षत्र को अवैध रूप से बढ़ा जाने लगा है। रोडेशियाई मामले में संघीय कार्यवाही से यह प्रश्न उत्पन्न हो गया कि क्या विद्रोहियों के विरुद्ध किसी संघ (Federation) की किसी इकाई द्वारा केन्द्र से संघर्ष हाने पर संघ को यह अधिकार है कि वह सुरक्षा परिषद् से सहायता प्राप्त करें।

(iv) इराक-1990 में इराक के विरुद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में 28 राष्ट्रों की बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने कार्यवाही करके कुवैत को आजाद करा लिया। इसके बाद सुरक्षा परिषद् ने इराक के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध आरोपित किये। संयुक्त राज्य अमेरिका का सुरक्षा परिषद् पर वर्चस्व होने के कारण इराक के विरुद्ध एकतरफा कार्यवाही हुई, जिसकी सारे विश्व के राष्ट्रों ने निन्दा की।

2. शांति के लिए खतरा उत्पन्न करने वाले शांति भंग और आक्रामक कार्यों के सम्बन्ध में कार्यवाही (Action with respect to Threat to Peace, Breaches of Peace and Acts of Aggression)-संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के सातवें अध्याय में शांति को खतरे में डालने वाले, शांति भंग और आक्रामक कार्यों के सम्बन्ध में कार्यवाही से है। अनुच्छेद 39 के अनुसार परिषद् इस बात का निर्णय करेगी कि कौन-सी परिस्थितियों शांति को खतरे में डालने वाली, शांति भंग करने वाली और आक्रमण की परिस्थितियाँ समझी जा सकती हैं। वह यह भी सिफारिश करेगी अथवा तय करेगी कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा कायम करने अथवा फिर से स्थापित करने के लिए कौन-सी कार्यवाही की जानी चाहिए। अनुच्छेद 40 में यह व्यवस्था की गई है कि किसी स्थिति को बिगड़ने से बचाने के लिए सुरक्षा-परिषद् अपनी सिफारिशें करने अथवा किसी कार्यवाही को निश्चित करने से पूर्व विवादी पक्षों से ऐसी अस्थायी कार्यवाहियां करने की मांग करेगी जिन्हें वह उचित या आवश्यक समझे।

प्रादेशिक समस्याएं (Regional Problems)-ऐसी समस्याओं के समाधान हेतु, जिनके सम्बन्ध में प्रादेशिक कार्यवाही ही उचित हैं, प्रादेशिक अभिकरण अथवा संगठन हो सकते हैं; परन्तु ऐसे संगठन अथवा अभिकरण और उनकी कार्यवाहियां संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रयोजनों एव सिद्धांतों के अनुरूप होनी चाहिए।

सुरक्षा-परिषद् स्थानीय झगड़ों को ऐसे प्रादेशिक संगठनों के माध्यम से सुलझाए जाने को प्रोत्साहन देगी। (अनुच्छेद 52)। सुरक्षा-परिषद् जहाँ उचित समझे, अपनी सत्ता के अन्तर्गत बाध्यकारी कार्यवाही करने के लिए ऐसी प्रादेशिक व्यवस्थाओं को उपभोग में ला सकती है (अनुच्छेद 53)। प्रादेशिक संगठन एवं अभिकरण अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए जो भी कदम उठायेंगे, उनकी सूचना नियमित रूप से सुरक्षा-परिषद् को दी जाएगी। (अनुच्छेद 54) 1

अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को बनाये रखने के लिए सुरक्षा-परिषद् द्वारा सैनिक कार्यवाही करने के कुछ सफल उदाहरण हैं- (कोरिया 1950), कांगो (1960-64) रोडेशिया (1966-67) 1

3. सदस्यता सम्बन्धी कार्य (Functions relating to Membership)-चार्टर के अनुच्छेद 4 के अनुसार कोई राष्ट्र संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य तब तक नहीं बन सकता, जब तक सुरक्षा-परिषद् के पांच स्थायी तदस्यों के स्वीकारात्मक मत (Affirmative vote) सहित 9 सदस्यों का समर्थन प्राप्त न हो। स्थायी सदस्यों (अमेरिका) के निषेधाधिकार के कारण ही लगभग दो दशक तक साम्यवादी चीन संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बन सका ।

अनुच्छेद 5 के अनुसार "संयुक्त राष्ट्रसंघ के किसी भी सदस्य को, जिसके विरुद्ध सुरक्षा-परिषद् द्वारा कोई निवारक

या बाध्यकारी कार्यवाही (Preventive or Enforcement Action) की गई हो, महासभा द्वारा सुरक्षा-परिषद् की सिफारिश पर सदस्यता के अधिकारों या विशेषाधिकारों (Rights and Privilege of Membership) के प्रयोग से निलम्बित किया जा सकता है। परन्तु यदि सुरक्षा-परिषद् चाहे, तो विशेषाधिकारों के प्रयोग को पुनः प्रदान कर सकती है।"

अनुच्छेद 6 में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का कोई सदस्य यदि बार-बार चार्टर के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है तो सुरक्षा-परिषद् की सिफारिश पर महासभा उसे संघ से निकाल (Expel) सकती है।

इस प्रकार सुरक्षा-परिषद् नए राष्ट्रों के संघ का सदस्य बनाने, सदस्यता के अधिकारों व विशेषाधिकारों का निलम्बन एवं पुनः प्रदान करने तथा सदस्यता को समाप्त करने की मांग स्वीकार कर लेती हैं।

4. निर्वाचन-सम्बन्धी कार्य (Electoral Functions)-संयुक्त राष्ट्रसंघ का महासचिव (Secretary General) सुरक्षा-परिषद् की सिफारिश पर ही महासभा द्वारा नियुक्त किया जाता है। सुरक्षा-परिषद् महासभा से मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice) के न्यायाधीशों का चुनाव करती है।

5. चार्टर में संशोधन (Amendment in the Charter) संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में संशोधन के प्रस्ताव महासभा द्वारा अथवा संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के सामान्य सम्मेलन (General Conference) द्वारा किये जा सकते हैं। ये संशोधन उसी समय प्रभावी होते हैं जब वे महासभा के कुल सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिए जाएं, जिसमें सुरक्षा-परिषद् के सभी स्थायी सदस्य शामिल हों।

6. निरीक्षणात्मक कार्य (Supervisory Functions)-चार्टर के अनुच्छेद 26 के अनुसार सुरक्षा-परिषद् का यह दायित्व है कि वह शस्त्र नियन्त्रण (Regulation of armaments) की दृष्टि से एक तन्त्र की स्थापना करने की योजनाओं की रूप-रेखा तैयार करें तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के सामने पेश करें। यह कार्य सुरक्षा-परिषद् सैन्य स्टाफ समिति (Military Staff Committee) की सहायता से करेगी।

अनुच्छेद 83 के अनुसार सामरिक महत्त्व के क्षेत्रों (Strategic Areas) के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने जो दायित्व ग्रहण किये हैं, उन्हें निभाने का भार भी सुरक्षा-परिषद् पर है। संरक्षण परिषद् (Trusteeship Council) के अन्तर्गत इन क्षेत्रों की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक प्रगति के लिए सुरक्षा-परिषद् सहायता के कार्य करेगी।

9. संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर-प्रायः यह देखा गया है कि प्रत्येक बड़े युद्ध के पश्चात् एक नई विश्व-व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की जाती है। जब युद्ध की तबाही से मानव की आत्मा पूर्ण रूप से झुलस जाती है तो वह शान्ति की कामना करने लगता है। एक ऐसी संस्था की स्थापना का विचार उदित होने लगता है जो मानव को युद्ध से छुटकारा दिला सके तथा संघर्ष के स्थान पर राष्ट्रों के आपसी विवादों तथा विरोधों का शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने की व्यवस्था कर सके। अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की स्थापना मानव की इसी इच्छा का परिणाम है। चीवर तथा हेवीलैंड का कथन है- "राष्ट्रसंघ की स्वापना के 26 वर्ष बाद (1946 ई. में) राष्ट्रसंघ को समाहित कर लेने वाली लपटों से एक नई लेकिन उसी के समरूप एक संगठन, संयुक्त राष्ट्र संगठन नामक संस्था का उदय हुआ है।"

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा की स्थापना के लिए राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई थी, जो अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा सद्भावना की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इसके अन्तर्गत अन्तरर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान करने, आक्रामक कार्रवाइयों के विरुद्ध सदस्य राज्यों को सुरक्षा प्रदान करने, युद्ध रोकने तथा विश्व-शान्ति कायम रखने की विस्तृत व्यवस्था की गई थी। तत्कालीन अमेरिकन राष्ट्रपति बुडरो विलसन (Woodrow Wilson) ने इसके विधान को 'शान्ति का विधान' और शान्ति को गारंटी माना था। परन्तु राष्ट्रसंघ अपनी दुर्बलताओं तथा कई महाशक्तियों के असहयोग के कारण अपने उद्देश्यों में असफल हुआ। सन् 1934 में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया जिससे अधिक भयंकर तथा विनाशकारी युद्ध मानव इतिहास में पहले कभी नहीं लड़ा गया था। परिणामस्वरूप युद्ध के आरम्भ होते ही एक अधिक प्रभावशाली तथा शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी और विश्व के अनेक नेताओं द्वारा इस दिशा में प्रयल किये जाने लगे। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

1. लन्दन घोषणा (London Declaration)-12 जून, 1941 को मित्र राष्ट्रों (Allied Powers) ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस तथा आस्ट्रेलिया आदि के प्रतिनिधि लन्दन में इकट्ठे हुए और उन्होंने एक घोषणा पर हस्ताक्षर किये। इस घोषणा के अनुसार वे पृथक् शान्ति स्थापित करने के प्रयत्न नहीं करेंगे, बल्कि शान्ति स्थापित करने का एकमात्र मूल आधार विश्व के सभी स्वतंत्र राज्यों का ऐच्छिक सहयोग होगा ताकि युद्ध और आक्रमण का भय समाप्त हो जाए। इसके बाद किसी ऐसे अन्तरर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना के लिए राजनीतिज्ञों में भेंट तथा सम्मेलनों का सिलसिला चालू हो गया।

2. अटलाटिक चार्टर 1941 (Atlantic Charter, 1941)-14 अगस्त, 1941 को अमेरिकन राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल अटलांटिक महासागर में एक युद्धपोत पर मिले और दोनों ने आपसी विचार-विमर्श के पश्चात् अटलांटिक घोषणा द्वारा विश्व शांति की स्थापना करने के लिए कुछ सिद्धांतों की घोषणा की। बाद में सोवियत संघ ने भी इस चार्टर पर अपने हस्ताक्षर कर दिए। इस अटलांटिक चार्टर को ही संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना में प्रथम पग (First step in the creation of United Nations) माना जाता है।

3. संयुक्त राष्ट्र घोषणा 1942 (United Nations Declaration, 1942) - सन् 1941 में संयुक्त राज्य अमेरिका भी मित्र राष्ट्रों के साथ विश्व-युद्ध में शामिल हो गया और रूस ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इसके दूसरी ओर धुरी राष्ट्रों (Axis Powers) का साथ देने के लिए जापान भी युद्ध में कूद पड़ा। इसके परिणामस्वरूप युद्ध का क्षेत्र बहुत अधिक बढ़ गया। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के प्रयत्न भी तीव्र हो गए। 1 जनवरी 1942 को 26 राष्ट्रों ने मिलकर वाशिंगटन में संयुक्त राष्ट्रसंघ की घोषणा पर हस्ताक्षर किये। इस घोषणा में अटलांटिक चार्टर के सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया गया। इसमें यह प्रतिज्ञा की गई कि घोषणा पर हस्ताक्षर करने वाली सरकारें कभी भी धुरी राष्ट्रों के साथ सन्धि नहीं करेंगी और उनके विरुद्ध अपनी सारी शक्ति लगा देंगी। यह घोषणा युद्ध काल की दूसरी महत्त्वपूर्ण घोषणा थी। बेण्डेबोश तथा होगन ने लिखा है कि "यदि अटलांटिक घोषणा संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना में प्रथम कदम वा तो जनवरी 1942 की संयुक्त राष्ट्र घोषणा दूसरा कदम।"

4. मास्को घोषणा, 1943 (Moscow Declaration 1943) 30 अक्तूबर, 1943 को मास्को में अमेरिका, ब्रिटेन, चीन तथा रूस के विदेश मन्त्रियों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें उन्होंने अटलांटिक चार्टर के सिद्धांतो के आधार पर विश्व शांति व सुरक्षा को बनाये रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना पर जोर दिया मास्को घोषणा में यह कहा गया कि इस प्रकार के संगठन में शांतिप्रिय सभी छोटे-बड़े देश शामिल होंगे तथा यह संगठन सभी शांतिप्रिय राज्यों की समानता के सिद्धांत पर आधारित होगा। वे विश्व में शांति एवं सुरक्षा की स्थापना के लिए युद्ध में शत्रुओं के विरुद्ध संयुक्त रूप से कार्य करेंगे। युद्ध के पश्चात् शस्त्रों के नियमन (Regulation of Arms) के लिए समझौता करने के लिए, आपस में तथा राष्ट्रों के साथ वार्ता तथा सहयोग करेंगे। मास्को घोषणा संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना में एक महत्त्वपूर्ण कदम माना जाता है।

5. तेहरान सम्मेलन 1943 (Teheran Conference, 1943) सन् 1943 में ईरान की राजधानी तेहरान में एक सम्मेलन हुआ जिसमें अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल तथा रूस के प्रधानमंत्री स्टालिन ने भाग लिया। यह सम्मेलन 28 नवम्बर से 1 दिसम्बर 1943 तक चला। 1 दिसम्बर 1943 को तेहरान घोषणा की गई। यह प्रथम अवसर था जबकि अमेरिकन, राष्ट्रपति तथा रूस के प्रधानमंत्री एक-दूसरे के सम्पर्क में आए।

तेहरान घोषणा में यह कहा गया कि 'हम यह दृढ़ता से निश्चय करते हैं कि हम सभी राष्ट्र युद्ध और शांति के समक्ष सहयोग से भाग लेंगे। यह शांति युगों तक युद्धों के भार को दूर कर देगी। हम क्रूरता और दासता, अत्याचार और असहिष्णुता को दूर करने का प्रयत्न करेंगे। हम ऐसे सभी राष्ट्रों का स्वागत करेंगे जो विश्व संघ में शामिल होना चाहेंगे। हम विश्वास करते हैं कि एक दिन ऐसा आयेगा जब संसार के सभी मनुष्य सुखमय और स्वतंत्र जीवन व्यतीत करेंगे तथा वे अपने सब कार्य अपनी इच्छानुसार और अन्तःकरण के अनुसार करेंगे।" घोषणा के अन्त में सभी राष्ट्रों से सहयोग की आशा की गई।

6. डम्बर्टन ओक्स सम्मेलन, 1944 (Dumberton Oaks Conference, 1944) - संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना में अगला कदम अमेरिका के वाशिंगटन नगर में डम्बर्टन ओक्स भवन में हुआ सम्मेलन था। यह सम्मेलन 21 अगस्त से 7 अक्तूबर 1944 तक चला। इसमें अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूस तथा चीन के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यह सम्मेलन बहुत ही महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इसमें स्थापित किये जाने वाले विश्व संगठन के गठन, कार्यों तथा सिद्धांतों आदि पर पूर्ण रूप से विचार किया गया। इसी सम्मेलन में प्रस्तावित संगठन को संयुक्त राष्ट्रसंघ नाम देने का भी निर्णय लिया गया। लम्बे विचार-विमर्श के पश्चात् कई बातों के सम्बन्ध में सहमति प्रकट की गई और उन्हें डम्बर्टन ओक्स सुझाव (Dumberton Oaks Proposals) का नाम दिया गया।

7. याल्टा सम्मेलन 1945 (Yalta Conference, 1945)-संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना से सम्बन्धित अगला सम्मेलन रूस के क्रिमिया प्रदेश के याल्टा नगर में हुआ। इस सम्मेलन में रूजवेल्ट (Roosevelt), स्टालिन (Stalin) तथा चर्चिल (Churchill) ने भाग लिया। यह सम्मेलन 4 फरवरी से 11 फरवरी 1945 तक चला।

(i) इस सम्मेलन में सुरक्षा-परिषद् के मतदान-पद्धति तथा अन्य कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श किया गया। सम्मेलन में एक विशेष फार्मूला स्वीकृति किया गया जो 'याल्टा मतदान फार्मूला' के नाम से प्रसिद्ध है। इस फार्मूला के अनुसार सुरक्षा-परिषद् में कार्य-विधि सम्बन्धी विषयों (Procedural Matters) के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों पर निर्णय लेने के लिए स्थायी सदस्यों के मतों सहित 9 सदस्य देशों के मत उसके पक्ष में होने चाहिए। कार्य सम्बन्धी विषयों पर पक्ष में किन्हीं 7 सदस्यों के मतों से निर्णय हो सकता है। इस प्रकार कार्यवाही सम्बन्धी विषयों को छोड़ कर सभी विषयों पर निर्णय लेने में पांच बड़ी शक्तियों की सहमति अनिवार्य थी। सुरक्षा-परिषद् में विशेषाधिकार (Veto) की व्यवस्था इसी समझौते का परिणाम है। वर्तमान चार्टर के 29 अनुच्छेद में इस व्यवस्था को ज्यों-का त्यों रख दिया गया।

(ii) सम्मेलन की कार्य-सूची में न्यास-प्रणाली (Trusteeship System) की समस्या को शामिल करने के लिए भी समझौता हुआ।

(iii) डम्बर्टन ओक्स सम्मेलन में सोवियत संघीय गणराज्यों की सदस्यता के प्रश्न पर कोई निर्णय नहीं हो सका था। याल्टा सम्मेलन में इस विषय पर भी विचार हुआ और यह तय किया गया कि अमेरिका तथा इंग्लैण्ड यूक्रेन (Ukraine) और वायलो-रूस (Bylorussia) को संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्राथमिक सदस्यता दिलाने के लिए प्रयत्न करेंगे।

(iv) सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को स्थापित करने के लिए 25 अप्रैल 1945 को अमेरिका के सान फ्रांसिस्को (San Francisco) नगर में एक संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन बुलाया जाए।

इस प्रकार याल्टा सम्मेलन संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है। इसमें उन बातों का निर्णय सम्भव हो सका जिन पर डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन में निर्णय नहीं हो सका था।

8. सान फ्रांसिस्को सम्मेलन (San Francisco Conference, 1945) - वाल्टा सम्मेलन (Yalta Conference) में लिए गए निर्णय के अनुसार 25 अप्रैल 1945 को अमेरिका के फ्रांसिस्कों शहर में राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र को तैयार करना तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ को पूर्ण रूप से स्थापित करना था। इस सम्मेलन में 51 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने लगभग दो महीने तक संयुक्त राष्ट्रसंघ के संविधान पर विचार-विमर्श किया और 25 जून, 1945 को इसके चार्टर (Charter) को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। चार्टर के अनुच्छेद 110 में यह कहा गया कि यह चार्टर उस समय लागू माना जाएगा जब इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, चीन, प्रशा, अमेरिका तथा शेष संसार के अधिकांश राज्यों (Majority of other states) द्वारा स्वीकार कर लिया जाएगा और उनके द्वारा इस पर हस्ताक्षर कर दिये जाएंगे। यह शर्त 24 अक्तूबर, 1945 तक पूरी हो गई और उसी दिन से संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर लागू हो गया। अतः वह दिन (24 अक्टूबर, 1945) विश्व भर में संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का पहला अधिवेशन 10 फरवरी, 1946 को लन्दन के वेस्टमिनिस्टर हाल में हुआ। यह अधिवेशन 15 फरवरी तक चला और इसमें संघ के अनेक पदाधिकारियों को चुना गया, जब संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ तो औपचारिक रूप से राष्ट्रसंघ अभी मौजूद था। 8 अप्रैल, 1946 को राष्ट्रसंघ की सभा ने अपने अन्तिम अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर स्वयं अपनी समाप्ति की घोषणा की। संयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्यालय न्यूयार्क (अमेरिका) में स्थित है।

9. संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर-उद्देश्य (Aims)- संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना 24 अक्टूबर 1945 में हुई। संयुक्त राष्ट्रसंघ के संविधान को चार्टर (Charter of U.N.O.) कहा जाता है। चार्टर में एक प्रस्तावना, 111 अनुच्छेद तथा 19 अध्याय हैं। चार्टर के अनुच्छेद 1 में संयुक्त राष्ट्रसंघ के **उद्देश्यों** का वर्णन किया गया हैं। ये इस प्रकार हैं-

1. "अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा की स्थापना करना तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शांति-विरोधी तत्वों के निवारण तथा आक्रमण-सूचक कार्यों एवं शांति के अन्य अतिक्रमणों के दमन के लिए प्रभावपूर्ण सामूहिक उपाय करना, और शांतिपूर्ण उपायों से ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निर्णय अथवा समझौता करना जिससे शांति के भंग होने की आंशका हो।"

2. 'सभी राष्ट्रों के बीच सब लोगों के समान अधिकार और स्वाधीनता के सिद्धांत पर आधारित मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना और विश्व-शांति को सुदृढ़ बनाने के लिए उचित उपाय करना।"

3. "अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तवा मानवतावादी समस्याओं के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना तया जाति, भाषा, लिंग, धर्म का भेद किये बिना सबके लिए मानव अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के सम्मान को बढ़ाना एवं उसे प्रोत्साहन देना।"

4. "इन सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न राष्ट्रों के कार्यों में सामन्जस्य उत्पन्न करने के लिए एक केन्द्र के रूप में कार्य करना।"

व्याख्या (Explanation) - चार्टर के अनुच्छेद 1 में संयुक्त राष्ट्रसंघ के जो उद्देश्य बताए गए हैं, उनकी व्याख्या इस प्रकार है-

(i) शांति और सुरक्षा को कायम रखना (Maintenance of Peace and Security)-संयुक्त राष्ट्रसंघ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य विश्व-शांति और सुरक्षा को बनाये रखना है। गुड्सपीड के मतानुसार "यह संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रायमिक उद्देश्य है।" ऐसा यह सोचकर किया गया है कि कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति तब तक नहीं कर सकता जब तक विश्व में शांति और सुरक्षा का वातावरण न हो। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के वातावरण में ही वह अपने कार्यों का सफलतापूर्वक सम्पादन कर सकता है। इसलिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माताओं ने संघ के उद्देश्यों की सूची में सर्वप्रथम स्थान शांति और सुरक्षा की प्रदान किया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह कहा गया है कि संघ शांति को भंग करने वाले भय को दूर करने का प्रयास करेगा और आक्रमणकारी कार्यों को दबाने तथा शांति को भंग करने वाले कार्यों को रोकने का प्रयत्न करेगा। वह आक्रमण-सूचक कार्यों एवं शांति के अन्य अतिक्रमणों के दमन के लिए प्रभावपूर्ण सामूहिक कार्रवाई करेगा। चार्टर के 9वें अध्याय में शांति को खतरा, शांति-भंग अथवा आक्रमण की विभीषिका को रोकने के उपाय बताये गये हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्रसंघ का यह उद्देश्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण तरीकों से समाधान करने का प्रयास करें। यह कहा गया है कि शांति भंग होने की वास्तविक स्थिति तथा आक्रमण से पूर्व संयुक्त राष्ट्रसंघ विभिन्न शांतिपूर्ण तरीकों द्वारा विवादों का निपटारा करने का प्रयास करेगा। चार्टर का छठवां अध्याय विवाद को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने की व्यवस्था बताता है। शांति और सुरक्षा कायम रखने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए चार्टर की धारा 2 अनुदेशित करती है। कि "सदस्य राज्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने का इस प्रकार प्रयत्न करेंगे जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा तया न्याय को किसी प्रकार का खतरा न हो।"

(ii) मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास (Development of Friendly relations) - संयुक्त राष्ट्रसंघ का दूसरा उद्देश्य आत्म-निर्णय और समान अधिकारों के सिद्धांत के आधार पर सदस्य-राज्यों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विकसित करना है। "शांति और सुव्यवस्या को कायम रखने के लिए राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होना बहुत ही आवश्यक है।" भय, अनिश्चिता, संदेह तथा ईर्ष्या के वातावरण में किसी प्रकार की शांति संभव नहीं हो सकती है। वास्तविक शांति और सुरक्षा तभी कायम रह सकती है जबकि राष्ट्रों के बीच भय, आशंका तथा ईर्ष्या का अभाव हो। चार्टर के निर्माता इस तथ्य से भली भांति परिचित थे। इसलिए उन्होंने शांति और सुव्यवस्या कायम रखने के साथ-साथ राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने को संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख उद्देश्य घोषित किया। परन्तु चार्टर में इस बात का निश्चित रूप से कोई उल्लेख नहीं है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ इसके लिए कौन-सा रास्ता अपनाएगा। सिर्फ इतना ही कहा गया है कि मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के विकास का आधार समान अधिकारों तथा सब लोगों के आत्म-निर्णय का सिद्धांत होगा। परन्तु सभी को समान अधिकार तथा आत्मनिर्णय के प्रसंग का अभिप्राय यह नहीं है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ यथास्थिति में इन सिद्धांतों के अनुरूप परिवर्तन लाने की गारंटी देता है। इसका अभिप्राय तो सिर्फ यह है कि इन सिद्धांतों के प्रति सम्मान प्रस्तावित मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध के विकास का आधार होगा।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (International Co-operation)- अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को कायम रखना संयुक्त राष्ट्रसंघ का राजनीतिक उद्देश्य कहा जा सकता है। इसका यह कारण है कि इसका प्रत्यक्ष प्रभाव राष्ट्रों के पारस्परिक शक्ति-संघर्ष पर पड़ता है। किन्तु, इस राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति सामाजिक अशांति एवं आर्थिक तथा सांस्कृतिक पिछड़ेपन के वातावरण में संभव नहीं है। जैसा वेन्डेनवोश तया होगन ने लिखा है- "आर्थिक दुर्दशा तया

सामाजिक अशांति उन तनावों एवं असंतोष को जन्म देती है जो व्यवस्वा, स्थायित्व और सुरक्षा को समाप्त कर देते हैं। ऐसी परिस्थितियों में केवल अत्यधिक शक्ति के प्रयोग द्वारा ही शांति को कायम रखा जा सकता है। परन्तु इस तरह की शांति अस्थायी और विस्फोटक होती है।"

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर मानव अधिकार एवं मौलिक स्वतंत्रता के स्वच्छन्द उपयोग की कोई गारंटी नहीं देता। यह इन अधिकारों को कार्यान्वित करने के लिए किसी साधन की व्यवस्था नहीं करता और न ही यह विश्व के राष्ट्रों पर इन अधिकारों और स्वतंत्रता का सम्मान करने का कोई उत्तरदायित्व आरोपित करता है। अतः आलोचक का कहना है कि इसका कोई वैधानिक महत्त्व नहीं है।

(iv) सामंजस्य (Co-ordination) —संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक अन्य उद्देश्य उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सदस्य राज्यों के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए एक केन्द्र के रूप में कार्य करना है। यह संभव नहीं है कि आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र से सम्बद्ध सभी अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों का सम्पादन संयुक्त राष्ट्रसंघ के द्वारा ही हो। संयुक्त राष्ट्रसंघ के बाहर तथा उससे सम्बद्ध अनेक अभिकरण इन क्षेत्रों में कार्य करते हैं। उनके कार्यों में सामंजस्य स्थापित करना संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख दायित्व है। संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के लिए यह कार्य काफी महत्त्व का है। इसके अभाव में संघ का कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सकता ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के सिद्धांत (Principles of the U.N.O.)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के अनुच्छेद 2 इसके मूल सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। ये सिद्धांत इस प्रकार हैं:

1. संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य प्रभुसत्त-सम्पन्न, एवं समान है।

2. सभी सदस्य-राष्ट्र चार्टर में दिये गए उत्तरदायित्वों को ईमानदारी के साथ निभाएंगे।

3. सब सदस्य-राज्य अपने विवादों का समाधान शांतिपूर्ण ढंग से तथा इस प्रकार से करेंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा तथा न्याय को किसी प्रकार का खतरा न हो।

4. सभी सदस्य-राष्ट्र अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में किसी भी राष्ट्र की राजनीतिक स्वतंत्रता तथा प्रभुसता के विरुद्ध बल का प्रयोग नहीं करेंगे और न ही ऐसा करने की धमकी देंगे। वे कोई ऐसा कार्य नहीं, करेंगे जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों के प्रतिकूल हो।

5. सदस्य राज्य संयुक्त राष्ट्रसंघ की हर प्रकार से सहायता करेंगे और वे उस राज्य की सहायता नहीं करेंगे जिसके विरुद्ध संयुक्त राष्ट्रसंघ कोई कार्यवाही कर रहा होगा।

6. संयुक्त राष्ट्रसंघ इस बात की देखभाल करेगा कि जो राष्ट्रसंघ के सदस्य नहीं है वे भी शांति व सुरक्षा को बनाए रखने के लिए इसके सिद्धांतों का पालन करेंगे।

7. संयुक्त राष्ट्रसंघ किसी भी राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

Q. 8. द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय राजनय में अंतर स्पष्ट कीजिए। दोनों के गुणों एवं दोषों का वर्णन कीजिए।

**द्विपक्षीय और बहुपक्षीय कूटनीति में अंतर

कूटनीति वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से देश अंतरराष्ट्रीय संबंधों का प्रबंधन करते हैं, आमतौर पर बातचीत, संवाद और राजनीतिक, आर्थिक या सांस्कृतिक संबंधों के माध्यम से। कूटनीति के दो मुख्य प्रकार होते हैं – **द्विपक्षीय कूटनीति** और **बहुपक्षीय कूटनीति**, जिनकी संरचना, कार्य, लाभ और सीमाएं अलग-अलग होती हैं।

1. परिभाषा और क्षेत्र

द्विपक्षीय कूटनीति:

द्विपक्षीय कूटनीति दो संप्रभु राज्यों के बीच संबंधों और वार्ताओं के प्रबंधन को संदर्भित करती है। यह कूटनीति का सबसे पारंपरिक और ऐतिहासिक रूप है। इसमें प्रत्येक देश दूसरे देश में अपने दूतावास और वाणिज्य दूतावास स्थापित करता है, और विशेष रूप से उस संबंध को संभालने के लिए राजनयिक नियुक्त किए जाते हैं।

* **उदाहरण**: भारत और रूस के बीच रक्षा सहयोग, या अमेरिका और चीन के बीच व्यापार समझौता।

बहुपक्षीय कूटनीति:

बहुपक्षीय कूटनीति में तीन या अधिक देशों के बीच सामूहिक रूप से बातचीत और समझौते होते हैं, आमतौर पर अंतरराष्ट्रीय संगठनों या सम्मेलनों के माध्यम से।

* **उदाहरण**: संयुक्त राष्ट्र महासभा, विश्व व्यापार संगठन की वार्ताएं, या पेरिस जलवायु समझौता।

2. संरचना और प्रारूप

द्विपक्षीय कूटनीति:

* केवल दो देशों के बीच संवाद।

* दूतावासों, उच्चायोगों, और राजकीय दौरों के माध्यम से संचालन।

* अधिकतर व्यक्तिगत स्तर की वार्ता होती है।

बहुपक्षीय कूटनीति:

* औपचारिक और संस्थागत मंचों में होती है।

* जैसे – संयुक्त राष्ट्र, WTO, NATO, या क्षेत्रीय संगठन।

* निर्णय बहुमत या आम सहमति से लिए जाते हैं।

3. उद्देश्य और फोकस

द्विपक्षीय कूटनीति:

* दो देशों के **विशिष्ट राष्ट्रीय हितों** पर केंद्रित।

* व्यापार, सुरक्षा, संस्कृति, और द्विपक्षीय समझौते जैसे मुद्दों पर।

* त्वरित और लक्षित समाधान संभव।

बहुपक्षीय कूटनीति:

* **वैश्विक या सामूहिक लक्ष्यों** पर केंद्रित जैसे – जलवायु परिवर्तन, मानवाधिकार, वैश्विक सुरक्षा।

* नियम-आधारित व्यवस्था बनाने का प्रयास।

* दीर्घकालिक और व्यापक समाधान।

4. लाभ/गुण

द्विपक्षीय कूटनीति:

* वार्ता में अधिक लचीलापन।

* निर्णय जल्दी हो सकते हैं।

* गहरे और रणनीतिक रिश्ते स्थापित करना आसान।

बहुपक्षीय कूटनीति:

* व्यापक भागीदारी और वैधता।

* वैश्विक मुद्दों पर सामूहिक कार्यवाही संभव।

* छोटे देशों को भी मंच मिलता है।

5. सीमाएँ

द्विपक्षीय कूटनीति:

* सीमित दायरा, वैश्विक मुद्दों के समाधान में कम प्रभावी।

* ताकतवर देश हावी हो सकते हैं।

* नीति असंगत हो सकती है अगर बहुपक्षीय प्रतिबद्धताओं से मेल न खाए।

बहुपक्षीय कूटनीति:

* निर्णय प्रक्रिया धीमी और जटिल।

* अलग-अलग हितों के कारण असहमति या कमजोर समझौते।

* नौकरशाही और समन्वय की कठिनाइयाँ।

6. व्यावहारिक उदाहरण

द्विपक्षीय कूटनीति:

* **भारत और भूटान**: ऊर्जा, सुरक्षा और विकास में सहयोग।

* **अमेरिका और जापान**: सैन्य, व्यापार और तकनीक में साझेदारी।

* **चीन और पाकिस्तान**: आर्थिक और रक्षा सहयोग, CPEC परियोजना।

बहुपक्षीय कूटनीति:

* **संयुक्त राष्ट्र**: शांति, सुरक्षा और मानवीय मामलों पर चर्चा।

* **WTO**: वैश्विक व्यापार नियमों पर बहुपक्षीय वार्ता।

* **पेरिस समझौता**: जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक प्रयास।

7. राजनयिकों की भूमिका

द्विपक्षीय कूटनीति में:

* विशेष देश का ज्ञान और स्थानीय संपर्क।

* संकट प्रबंधन और विशिष्ट मुद्दों पर वार्ता।

बहुपक्षीय कूटनीति में:

* सांस्कृतिक विविधताओं के बीच समझौते की कला।

* समूहों में कार्य करना और विभिन्न देशों से समन्वय।

8. परस्पर पूरकता

हालाँकि द्विपक्षीय और बहुपक्षीय कूटनीति को अलग-अलग रूपों में देखा जाता है, लेकिन वे **एक-दूसरे के पूरक** भी हैं।

* द्विपक्षीय वार्ता बहुपक्षीय पहलों के लिए समर्थन बना सकती है।

* बहुपक्षीय मंच उन मुद्दों को सुलझा सकते हैं जो द्विपक्षीय चैनलों से संभव नहीं।

* उदाहरण के लिए, अमेरिका और चीन के बीच द्विपक्षीय व्यापार वार्ता का प्रभाव वैश्विक व्यापार प्रणाली पर पड़ता है।

निष्कर्ष

द्विपक्षीय और बहुपक्षीय कूटनीति अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में विभिन्न, लेकिन परस्पर संबंधित भूमिकाएँ निभाते हैं। **द्विपक्षीय कूटनीति** लक्षित और केंद्रित समाधान प्रदान करती है, जबकि **बहुपक्षीय कूटनीति** वैश्विक समस्याओं के लिए सहयोगात्मक और नियम-आधारित दृष्टिकोण अपनाती है।

एक सफल विदेश नीति के लिए आवश्यक है कि दोनों प्रकार की कूटनीति को **संतुलित और सामरिक तरीके से** अपनाया जाए।

द्विपक्षीय राजनय (Bilateral Diplomacy)

लाभ (Merits)-द्विपक्षीय राजनय के कुछ निश्चित लाभ हैं-

1. जब दो राष्ट्राध्यक्ष वार्ता या समझौते के लिए परस्पर मिलते हैं, तो उनमें मैत्री-भाव बढ़ने की पूरी सम्भावना रहती है।

2. यदा-कदा राष्ट्राध्यक्षों की स्वीकृति के अभाव में किसी भी निर्णय में विलम्ब हो जाता है। यदि राष्ट्राध्यक्ष सीधी एवं प्रत्यक्ष वार्ता करें तो समस्या का तुरन्त निदान हो जाता है। समझौते या सन्धि में यदि बाधा हो, तो दूर हो जाती है अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में तो द्विपक्षीय सम्मेलन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें समस्याओं को और एक-दूसरे के दृष्टिकोण को अच्छी प्रकार समझने में सहायता मिलती है तथा लोकप्रियता में भी वृद्धि होती है।

दोष (Defects)-अब द्विपक्षीय राजनय के दोषों पर भी दृष्टिपात करना उचित होगा-

1. द्विपक्षीय सन्धि या समझौते के लिए जब दो राष्ट्राध्यक्ष मिलते हैं, तो बहुत-सा समय तो स्वागत आदि की औपचारिकता में व्यर्थ ही में नष्ट हो जाता है। अतएव शीघ्रता में निर्णय से लिए जाते हैं। परिपक्व विचारों के अभाव में तथा किसी प्रकार की पूर्व तैयारी न होने से इनमें अनेक त्रुटियाँ रह जाती हैं।

2. ऐसे निर्णयों का प्रत्येक पक्ष अपनी सुविधा तथा हितों के अनुसार अलग-अलग अर्थ लगा लेते हैं और निर्णयों का कार्यान्वयन (पूरा करना) कठिन होता है। दोनों पक्ष टालमटील की नीति अपनाते हैं।

3. राष्ट्राध्यक्षों के पास समय का अभाव रहता है। अतः जटिल समस्याओं को समझने में असमर्थ रहते हैं और परिणामस्वरूप सम्मेलन असफल हो जाता है और सम्बन्ध मधुर नहीं रह पाते।

(नेहरू-लियाकत अली पैक्ट ऐसे ही द्विपक्षीय राजनय का उदाहरण है, जिससे भारत-पाक सम्बन्ध और बिगड़ गए थे। इसी प्रकार पेरिस सम्मेलन (1960 ई.) का उदाहरण है, जिसमें रूस-अमेरिका के सम्बन्ध के संबंध अधिक खराब हो गए थे।

बहुपक्षीय राजनय

लाभ (Merits)-बहुपक्षीय राजनय के अनेक लाभ हैं। जैसे-

1. बहुपक्षीय राजनय में व्यक्तिगत सम्पर्क होने से मैत्री आदि में वृद्धि होती है और परिणामतः औपचारिकताएँ समाप्त हो जाती हैं।

2. बहुपक्षीय राजन्य में लचीलापन रहता है। मतभेदों का आदान-प्रदान से मसला सुलझा लिया जाता है।

3. सभी सम्मेलनों में राज्याध्यक्ष प्रधानमंत्री व्यक्तिगत रूप से प्रायः भाग नहीं ले पाते, तब राजदूतों को अपने देश का प्रतिनिधित्व करना पड़ता है। कुछ विशेषज्ञ भी रहते हैं। अतः उचित निर्णय लेने में सुविधा रहती है।

4. सम्मेलनों में भाग लेने वाले राष्ट्राध्यक्ष परस्पर परिचित हो जाते हैं और विश्वासपात्र बन जाते हैं। इससे अंतरर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान की पृष्ठभूमि नहीं बनानी पड़ती। निकलसन का कथन है, “बहुत से राज्याध्यक्ष एक-दूसरे को जान जाते हैं, अपितु परस्पर मित्र एवं विश्वास इसका प्रमाण है।

5. सम्मेलन की कार्यवाही गोपनीय रहने से इसके परिणामों को ही सार्वजनिक किया जाता है।

6. सम्मेलनों में विरोधियों के माध्य सामंजस्य लाने का प्रयास होता है। इससे अंतर्राष्ट्रीयता की भावना पुष्ट होती है।

7. सम्मेलनों में खुला राजनय अपनाया जाता है, क्योंकि बहुपक्षीय राजनय में गोपनीयता की संभावना नहीं है।

8. पक्षीय राजनय में समय की बचत होती है। एक राजनयिक का कथन है, "आज राजदूतों के कार्यों में इतनी वृद्धि हो गई कि यदि इन पर वार्ताओं का अतिरिक्त भार डाल दिया जाए, तो निर्णय के मार्ग में बाधा आएगी।"

9. सम्मेलनों को आयोजित करने वाले राज्यों को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका वहन करने का अवसर मिलता है। बहुपक्षीय राजनय प्रजातंत्र के अनुरूप है। इसमें छोटे राज्यों को भी बड़े राज्यों के साथ समानता के स्तर पर विचार-विमर्श का अवसर मिलता है।

10. बहुपक्षीय राजनय युद्ध को रोकने का महत्त्वपूर्ण एवं कारगर उपाय स्वीकार किया जाता है। विश्व-शान्ति स्थापित करने में बहुपक्षीय राजनय ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। महायुद्धों के पश्चात् बुलाए गए सम्मेलन इसके प्रमाण हैं।

दोष (Defects)-बहुपक्षीय राजनय के दोषों को इस प्रकार रेखांकित करेंगे-

1. बहुपक्षीय राजनय में प्रायः गोपनीयता का वातावरण बना रहता है, यद्यपि खुले राजनय को महत्त्व देने की बात कही जाती है। इससे संचि वार्ता, अविश्वास की भावना के कारण कठिन हो जाती है।

2. बहुपक्षीय राजनय में गुप्त बातें समय से पूर्व खुल जाने से संधियाँ कार्यान्वित नहीं हो पातीं।

3. सम्मेलनों में बार-बार मिलने पर राजनयिकों परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, अविश्वास आदि पनपने की अधिक संभावना रहती है।

4. राज्याध्यक्षों के सम्मेलन में दस वर्षों से भी उलझी समस्याओं का तुरन्त समाधान कर दिया जाता है। ऐसे निर्णय से व्यावसायिक राजनयज्ञों के महत्त्व में हास होता है।

5. सम्मेलनों में राष्ट्राध्यक्षों में निकट के सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित होने पर वे ऐसे वायदे या संधियाँ कर लेते हैं जिनका निर्वाह वे नहीं कर पाते। इससे बहुपक्षीय राजनय का महत्त्व कम होता है।

6. बहुधा (अक्सर) सम्मेलनों में की गई संधियों कार्यान्वित नहीं हो पातीं क्योंकि वे जनमत की उपेक्षा कर सम्पादित होती हैं। जनता उन्हें ठुकरा देती है। रूजवेल्ट के द्वारा की गई वर्साय की संधि को अमेरिकी कांग्रेस ने रद्द कर दिया था।

7. प्रायः सम्मेलनों में, दो राज्यों में मन-मुटाव होने से, वे एक दूसरे पर कीचड़ उछालते रहते हैं। इससे सद्भाव का वातावरण नष्ट हो जाता है।

8. निकलसन के अनुसार बहुपक्षीय राजनय में जो समय और धन दोनों का अपव्यय होता है। राष्ट्राध्यक्षों के पास जो समय होता है, वह औपचारिकताओं में व्यर्थ नष्ट हो जाता है।

9. निकलसन का कथन है "आजकल अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में इतनी अधिक गुटबन्दी हो गई है कि बहुपक्षीय राजनय के लिए न तो स्थान रह गया है और न कोई उपयोगिता है। विचारधारा, अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय हित और अन्य अनेक पूर्वाग्रहों के कारण सम्मेलनों में अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं, विचारों का कोई स्वरूप आदान-प्रदान संभव नहीं रहा। प्रत्येक देश अपने राजनीतिक प्रचार के लिए सम्मेलनों का दुरुपयोग करने लगता है।"

10. बहुपक्षीय राजनय का स्वरूप स्थायी न होकर समय और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनशील होता है।

Unit-IV

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) –

इतिहास

प्रथम विश्व युद्ध के बाद ILO की स्थापना राष्ट्र संघ की एक एजेंसी के रूप में की गई थी।

इसकी स्थापना 1919 में वर्साय की संधि द्वारा की गई थी ।

संगठन की स्थापना से पहले ही इसके संस्थापकों ने सामाजिक विचार और कार्य में बड़ी प्रगति की थी।

वर्ष 1946 में यह संयुक्त राष्ट्र (यूएन) की पहली विशेष एजेंसी बन गयी ।

श्रम और मानवाधिकारों को बढ़ावा देने में ILO ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महामंदी (1930 के दशक) के दौरान श्रम अधिकारों को सुनिश्चित करने में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

इसने दक्षिण अफ्रीका में उपनिवेशवाद-विरोध की प्रक्रिया और रंगभेद पर विजय पाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संगठन को 1969 में, वर्गों के बीच शांति स्थापित करने तथा श्रमिकों के लिए न्याय और निष्पक्ष कार्य को बढ़ावा देने के प्रयासों के लिए नोबेल शांति पुरस्कार मिला।

संरचना

ILO का आधार त्रिपक्षीय सिद्धांत है। ILO में अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन , शासी निकाय और अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय शामिल हैं।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन:

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की प्रगतिशील नीतियां अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन द्वारा निर्धारित की जाती हैं।

यह सम्मेलन एक वार्षिक आयोजन है, जो स्विटजरलैंड के जिनेवा में आयोजित होता है। इस सम्मेलन में ILO के सभी प्रतिनिधि एक साथ आते हैं।

कार्य: यह श्रम से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों की समीक्षा के लिए एक पैनल है।

शासी निकाय:

शासी निकाय अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का कार्यकारी निकाय है।

शासी निकाय की बैठक जिनेवा में होती है। यह वर्ष में तीन बार बैठक करती है।

यह कार्यालय संगठन का सचिवालय है।

इसमें 56 सदस्य और 66 उप सदस्य होते हैं।

कार्य:

अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के एजेंडे और नीतियों के संबंध में निर्णय लेता है।

यह सम्मेलन में प्रस्तुत करने के लिए संगठन के कार्यक्रम और बजट का मसौदा अपनाता है।

महानिदेशक का चुनाव.

अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय: जेनेवा (स्विट्जरलैंड में) । यह अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का स्थायी सचिवालय है।

कार्य: यह ILO की गतिविधियों का निर्णय करता है तथा इसका पर्यवेक्षण शासी निकाय और महानिदेशक द्वारा किया जाता है।

आईएलओ के सदस्य देश संबंधित क्षेत्रों के प्रासंगिक मुद्दों पर चर्चा करने के लिए समय-समय पर क्षेत्रीय बैठकें आयोजित करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के 183 सदस्य देशों में से प्रत्येक को सम्मेलन में चार प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है: दो सरकारी प्रतिनिधि तथा एक-एक श्रमिक और नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करने वाला, जिनमें से प्रत्येक स्वतंत्र रूप से बोल सकता है और

वोट दे सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के उद्देश्य**

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के उद्देश्य

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) संयुक्त राष्ट्र की एक विशिष्ट एजेंसी है, जिसकी स्थापना **1919** में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य **सामाजिक न्याय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त श्रम अधिकारों** को बढ़ावा देना है।

1. **श्रम में मौलिक सिद्धांतों और अधिकारों को बढ़ावा देना** ILO का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी श्रमिकों को निम्नलिखित मौलिक अधिकार प्राप्त हों:

* **संगठन बनाने और सामूहिक सौदेबाज़ी की स्वतंत्रता**: श्रमिकों और नियोक्ताओं को अपने संगठन बनाने और उसमें शामिल होने का अधिकार हो।

* **बलात् श्रम का उन्मूलन**: किसी को भी उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।

* **बाल श्रम का उन्मूलन**: बच्चों को ऐसे कार्यों से बचाया जाए जो उनके स्वास्थ्य और विकास के लिए हानिकारक हों।

* **भेदभाव का उन्मूलन**: जाति, धर्म, लिंग, या राजनीतिक विचारों के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

2. **सम्मान जनक (Decent) कार्य को बढ़ावा देना**

ILO यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि सभी व्यक्तियों को:

* **उत्पादक रोजगार के अवसर** मिलें।

* **उचित वेतन और नौकरी की सुरक्षा** प्राप्त हो।

* **सुरक्षित कार्य वातावरण** प्रदान किया जाए।

* **सामाजिक सुरक्षा सेवाएँ** जैसे स्वास्थ्य सेवा, पेंशन आदि प्राप्त हों।

* **अपनी चिंता व्यक्त करने और निर्णयों में भाग लेने की स्वतंत्रता** हो।

"सम्मान जनक कार्य" की संकल्पना ILO के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है।

3. **सामाजिक सुरक्षा को मजबूत करना**

ILO सभी लोगों को निम्नलिखित सेवाओं तक पहुँच प्रदान करने की वकालत करता है:

* **स्वास्थ्य सेवाएँ**

* **बेरोजगारी भत्ता**

* **वृद्धावस्था पेंशन**

* **मातृत्व लाभ**

इससे यह सुनिश्चित होता है कि जीवन की कठिनाइयों में श्रमिक और उनके परिवार गरीबी में न डूबें।

4. **रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देना**

ILO सरकारों और संगठनों को सहायता प्रदान करता है ताकि:

* **नई नौकरियाँ उत्पन्न की जा सकें**, विशेष रूप से युवाओं और हाशिए के समूहों के लिए।

* **उद्यमिता और कौशल विकास** को प्रोत्साहित किया जा सके।

* **बेरोजगारी और अल्परोजगार** से निपटने के लिए नीतियाँ बन सकें।

5. **श्रम मानकों और परिस्थितियों में सुधार**

ILO अंतरराष्ट्रीय श्रम मानकों के माध्यम से यह सुनिश्चित करता है कि:

* **न्यूनतम वेतन**,

* **कार्य के घंटे**,

* **काम की सुरक्षा**,

* **छुट्टियों के अधिकार** आदि सुनिश्चित किए जा सकें।

ILO द्वारा बनाए गए समझौतों और सिफारिशों के आधार पर सदस्य देश अपने श्रम कानून बनाते हैं।

6. **त्रिपक्षीय संवाद और सहयोग को बढ़ावा देना**

ILO की विशिष्टता इसका **त्रिपक्षीय ढांचा** है:

* इसमें **सरकार**, **नियोक्ता**, और **श्रमिक संगठनों** को साथ लेकर नीतियाँ और मानक तय किए जाते हैं।

यह सुनिश्चित करता है कि निर्णय **लोकतांत्रिक** हों और सभी संबंधित पक्षों की भागीदारी हो।

7. **वैश्विक श्रम चुनौतियों से निपटना**

ILO आधुनिक समय की चुनौतियों पर ध्यान केंद्रित करता है जैसे:

* **प्रवासी श्रमिक**

* **अनौपचारिक अर्थव्यवस्था**

* **डिजिटल तकनीक और स्वचालन**

* **जलवायु परिवर्तन और हरित नौकरियाँ**

* **लैंगिक समानता और समावेशिता**

8. **अनुसंधान, प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण**

ILO विभिन्न क्षेत्रों में शोध और प्रशिक्षण प्रदान करता है जिससे:

* देशों को प्रभावी श्रम संस्थान विकसित करने में सहायता मिले।

* बेहतर श्रम आंकड़े और विश्लेषण प्राप्त हो सकें।

* वैश्विक श्रम रुझानों और सर्वोत्तम प्रथाओं के आधार पर नीतिगत मार्गदर्शन मिल सके।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के प्रमुख सिद्धांत

1. **श्रम बल केवल एक आर्थिक वस्तु नहीं है**

* यह ILO का मूलभूत सिद्धांत है कि श्रमिकों को केवल एक उत्पादन संसाधन के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।

* श्रमिक एक **मानव अस्तित्व** रखते हैं, जिनके **अधिकार**, **सम्मान**, और **सामाजिक कल्याण** को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

2. **कार्य करने का अधिकार एक मौलिक मानव अधिकार है**

* हर व्यक्ति को अपनी आजीविका कमाने के लिए **स्वतंत्र और सम्मानजनक कार्य** करने का अधिकार है।

* इस अधिकार में समान अवसर और बिना भेदभाव के नौकरी प्राप्त करना शामिल है।

3. **सामाजिक न्याय के बिना स्थायी शांति असंभव है**

* ILO मानता है कि **दुनिया में शांति और समृद्धि** तभी संभव है जब श्रमिकों को **सामाजिक और आर्थिक न्याय** मिले।

* गरीबी, शोषण, और असमानता से निपटना वैश्विक स्थिरता के लिए आवश्यक है।

4. **मजदूरों की स्वतंत्रता और गरिमा का संरक्षण**

* सभी श्रमिकों को उनके काम की परिस्थितियों में **स्वतंत्रता, गरिमा, सुरक्षा और समान अवसर** प्राप्त होना चाहिए।

* किसी भी प्रकार के **शोषण या भेदभाव** को अस्वीकार किया जाता है।

5. **संगठन की स्वतंत्रता और सामूहिक सौदेबाज़ी का अधिकार**

* श्रमिकों और नियोक्ताओं को संगठित होने और **सामूहिक रूप से बातचीत करने का अधिकार** होना चाहिए।

* यह अधिकार उनके **आर्थिक और सामाजिक हितों** की रक्षा के लिए आवश्यक है।

6. **बच्चों का विशेष संरक्षण और बाल श्रम का उन्मूलन**

* ILO का सिद्धांत है कि **बच्चों को शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षित बचपन** का अधिकार मिलना चाहिए।

* **खतरनाक या पूर्णकालिक श्रम** से बच्चों को बचाना आवश्यक है।

7. **काम करने की न्यायसंगत स्थिति**

ILO यह सुनिश्चित करना चाहता है कि कार्य की स्थिति हो:

* **सुरक्षित और स्वास्थ्यवर्धक**

* **उचित कार्य समय**, जैसे 8 घंटे का कार्यदिवस

* **न्यायपूर्ण वेतन**

* **नियमित अवकाश**, विश्राम, और सामाजिक सुरक्षा के प्रावधान

8. **भेदभाव का विरोध**

* जाति, धर्म, लिंग, रंग, राजनीतिक विचार या राष्ट्रीय मूल के आधार पर किसी के साथ **भेदभाव नहीं होना चाहिए**।

* **समान कार्य के लिए समान वेतन** दिया जाना चाहिए।

9. **अंतरराष्ट्रीय सहयोग**

* श्रम मुद्दों का समाधान केवल राष्ट्रीय स्तर पर नहीं हो सकता; इसके लिए **अंतरराष्ट्रीय सहयोग** की आवश्यकता होती है।

* ILO का उद्देश्य है कि विभिन्न देश मिलकर **वैश्विक श्रम मानकों** का विकास और कार्यान्वयन करें।

10. **सतत विकास और रोजगार सृजन**

* ILO का मानना है कि **आर्थिक विकास** को **सामाजिक समावेश**, **पर्यावरणीय संतुलन**, और **स्थायी रोजगार** के साथ संतुलित करना चाहिए।

* श्रमिकों को बदलते समय के साथ **नए कौशल** सिखाना और **हरित नौकरियों** की ओर प्रोत्साहित करना इसका हिस्सा है।

निष्कर्ष:

ILO के सिद्धांत न केवल श्रमिकों की रक्षा के लिए हैं, बल्कि एक **न्यायसंगत, समावेशी और टिकाऊ वैश्विक समाज** के निर्माण में सहायक हैं। ये सिद्धांत मानवाधिकार, सामाजिक कल्याण और आर्थिक न्याय के गहरे मूल्यों पर आधारित हैं।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के कार्य (Functions of ILO)

1. **अंतरराष्ट्रीय श्रम मानकों का निर्माण (Formulation of International Labour Standards)**

ILO का प्रमुख कार्य श्रमिकों की परिस्थितियों में सुधार हेतु **अंतरराष्ट्रीय श्रम मानक (International Labour Standards)** बनाना है।

इन मानकों को दो स्वरूपों में प्रस्तुत किया जाता है:

* **Conventions (अधिवेशन)**: ये कानूनी रूप से बाध्यकारी होते हैं, जिन्हें सदस्य राष्ट्र अपनाकर अपने कानून में शामिल कर सकते हैं।

* **Recommendations (सिफारिशें)**: ये मार्गदर्शक होती हैं और कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं होतीं, लेकिन नीति निर्माण में सहायता करती हैं।

इन मानकों के माध्यम से ILO निम्न विषयों को संबोधित करता है:

* न्यूनतम मजदूरी

* काम के घंटे

* मातृत्व लाभ

* बाल श्रम का उन्मूलन

* सुरक्षित और स्वस्थ कार्य वातावरण

* समान वेतन और अवसर

2. **त्रिपक्षीय सहयोग (Tripartite Cooperation)**

ILO की एक विशेषता इसका **त्रिपक्षीय ढांचा (Tripartite Structure)** है, जिसमें तीन भागीदार शामिल होते हैं:

1. सरकारों के प्रतिनिधि

2. नियोक्ताओं (Employers) के प्रतिनिधि

3. श्रमिकों (Workers) के प्रतिनिधि

इन तीनों की भागीदारी से ILO की नीतियाँ और श्रम मानक तय किए जाते हैं।

यह त्रिपक्षीय सहयोग सुनिश्चित करता है कि सभी संबंधित पक्षों की **संयुक्त सहमति और सहभागिता** के साथ निर्णय लिए जाएँ।

3. **श्रम संबंधी समस्याओं पर अनुसंधान एवं अध्ययन (Research and Investigation of Labour Issues)**

ILO वैश्विक श्रम से संबंधित ज्वलंत मुद्दों पर:

* गहन अनुसंधान (research)

* सांख्यिकी संग्रह (data collection)

* विश्लेषण और रिपोर्टिंग

जैसे कार्य करता है। इसके लिए ILO **वैश्विक श्रम रिपोर्ट**, **वेतन रिपोर्ट**, **बाल श्रम की स्थिति**, **महिला श्रम भागीदारी**, आदि विषयों पर विस्तृत अध्ययन प्रकाशित करता है।

यह जानकारी नीति निर्माताओं को **तथ्य आधारित निर्णय** लेने में सहायता करती है।

4. **तकनीकी सहायता और क्षमता निर्माण (Technical Assistance and Capacity Building)**

ILO सदस्य देशों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार:

* **श्रम कानूनों को मजबूत करने**

* **श्रम प्रशासनिक तंत्र के विकास**

* **कौशल विकास और प्रशिक्षण कार्यक्रम**

* **सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के निर्माण** आदि में तकनीकी सहायता प्रदान करता है।

ILO सरकारों, ट्रेड यूनियनों, और नियोक्ता संगठनों को कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, और विशेषज्ञ सलाहकारों के माध्यम से सहयोग करता है।

5. **सामाजिक सुरक्षा और कल्याण को बढ़ावा देना (Promotion of Social Protection and Welfare)**

ILO का कार्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी श्रमिकों को न्यूनतम सामाजिक सुरक्षा प्राप्त हो। इसके अंतर्गत:

* स्वास्थ्य सेवाएँ

* बेरोजगारी भत्ता

* मातृत्व लाभ

* पेंशन योजनाएँ

* काम पर चोट के लिए मुआवज़ा

इन योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में ILO सदस्य देशों की सहायता करता है।

6. **श्रमिकों के अधिकारों की निगरानी और संरक्षण (Monitoring and Protection of Workers' Rights)**

ILO उन देशों की निगरानी करता है जिन्होंने ILO के श्रम मानकों को अपनाया है।

इसके लिए ILO के पास **सुपरवाइजरी तंत्र (Supervisory Mechanism)** होता है जिसमें:

* वार्षिक रिपोर्ट

* विशेषज्ञों की समिति (Committee of Experts)

* श्रमिकों या संगठनों की शिकायत प्रणाली के माध्यम से यह देखा जाता है कि सदस्य देश निर्धारित मानकों का पालन कर रहे हैं या नहीं।

7. **रोजगार के अवसरों को बढ़ाना और बेरोजगारी को कम करना (Promotion of Employment and Reduction of Unemployment)**

ILO रोजगार सृजन के लिए सदस्य देशों को मार्गदर्शन देता है जैसे:

* स्वरोजगार को बढ़ावा देना

* युवाओं के लिए कौशल प्रशिक्षण

* औपचारिक क्षेत्र में नौकरियों का विस्तार

* उद्यमिता को बढ़ावा देना

ILO यह सुनिश्चित करना चाहता है कि सभी को **सम्मानजनक और सुरक्षित रोजगार** मिल सके।

8. **विशेष श्रमिक वर्गों की सुरक्षा (Protection of Special Categories of Workers)**

ILO उन श्रमिकों के लिए विशेष कार्यक्रम और नीतियाँ बनाता है जो अक्सर उपेक्षित रहते हैं, जैसे:

* बाल श्रमिक

* प्रवासी श्रमिक

* घरेलू श्रमिक

* महिलाएँ

* विकलांग श्रमिक

* अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिक

इन वर्गों की सुरक्षा के लिए ILO विशेष अधिवेशन और कार्य योजनाएँ संचालित करता है।

9. **वैश्विक श्रम अभियान और जागरूकता फैलाना (Global Labour Campaigns and Awareness Building)**

ILO समय-समय पर जागरूकता अभियानों का आयोजन करता है जैसे:

* बाल श्रम विरोधी दिवस

* समान कार्य के लिए समान वेतन दिवस

* सुरक्षित और स्वस्थ कार्य दिवस

इन अभियानों का उद्देश्य है जनता, नीति निर्माताओं, और संगठनों को श्रमिक अधिकारों के प्रति जागरूक करना।

10. **सतत विकास और श्रम के भविष्य पर कार्य (Future of Work and Sustainable Development)**

ILO बदलती वैश्विक अर्थव्यवस्था, तकनीकी विकास (जैसे आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस), और जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए:

* **ग्रीन जॉब्स (Green Jobs)** को बढ़ावा देता है,

* **डिजिटल श्रम** की दिशा में नीतियाँ विकसित करता है,

* और **सतत विकास लक्ष्यों (SDGs)** के अनुरूप श्रम सुधारों को प्रोत्साहित करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह केवल श्रम मानकों को तय करने वाला संगठन नहीं है, बल्कि यह **एक सक्रिय, सहायक, और निगरानी करने वाला वैश्विक मंच** है, जो श्रमिकों के कल्याण, गरिमा, और अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। इसका उद्देश्य एक ऐसा दुनिया बनाना है जहाँ **काम सम्मानजनक, सुरक्षित और समान अवसरों से परिपूर्ण** हो।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की प्रमुख उपलब्धियाँ

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की स्थापना वर्ष **1919** में हुई थी, जिसका उद्देश्य दुनिया भर में **सामाजिक न्याय** को बढ़ावा देना और श्रमिकों के लिए बेहतर **कार्य स्थितियाँ**, **अधिकार**, और **सुरक्षा** सुनिश्चित करना था। 100 से अधिक वर्षों में, ILO ने श्रमिकों की बेहतरी के लिए वैश्विक स्तर पर कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं, जो इसे एक विशिष्ट और प्रभावशाली अंतरराष्ट्रीय संगठन बनाते हैं।

1. **अंतरराष्ट्रीय श्रम मानकों की संरचना**

ILO की सबसे बड़ी उपलब्धि है इसके द्वारा बनाए गए **श्रम मानक**। अब तक ILO ने **190 से अधिक कन्वेंशन (Conventions)** और **200 से अधिक सिफारिशें (Recommendations)** अपनाई हैं। ये मानक कार्य समय, मजदूरी, मातृत्व लाभ, समान वेतन, जबरन श्रम, बाल श्रम, सामाजिक सुरक्षा, और कार्यस्थल पर सुरक्षा जैसे क्षेत्रों को कवर करते हैं। ये अंतरराष्ट्रीय श्रम मानक विश्व के कई देशों के **राष्ट्रीय श्रम कानूनों** की नींव बन चुके हैं।

2. **बाल श्रम और जबरन श्रम के उन्मूलन में नेतृत्व**

ILO ने बाल श्रम और बंधुआ मजदूरी के खिलाफ कई अंतरराष्ट्रीय पहल की हैं। विशेष रूप से, **IPEC (International Programme on the Elimination of Child Labour)**, जो 1992 में शुरू हुआ, दुनिया का सबसे बड़ा कार्यक्रम है जो **बाल श्रम को खत्म करने** के लिए समर्पित है। इसके अतिरिक्त, ILO का **Forced Labour Convention (1930)** और **Its Protocol of 2014** जबरन श्रम को समाप्त करने के लिए एक मजबूत वैश्विक आधार बनाते हैं।

3. **त्रिपक्षीय सहयोग की अनूठी प्रणाली**

ILO की एक विशिष्ट उपलब्धि है इसकी **त्रिपक्षीय संरचना**, जिसमें **सरकारों, नियोक्ताओं और श्रमिकों** के प्रतिनिधि एक साथ बैठकर निर्णय लेते हैं। यह दुनिया का एकमात्र संगठन है जो इस ढांचे में कार्य करता है। इससे सभी नीतियों और मानकों में **संतुलन, पारदर्शिता, और लोकतांत्रिक सहभागिता** सुनिश्चित होती है।

4. **नोबेल शांति पुरस्कार प्राप्त करना (1969)**

ILO को वर्ष **1969** में **नोबेल शांति पुरस्कार** प्रदान किया गया। यह सम्मान ILO की उस भूमिका को मान्यता देता है जिसमें उसने दुनिया में **श्रमिक अधिकारों की सुरक्षा, सामाजिक न्याय, और वैश्विक शांति** के लिए उल्लेखनीय योगदान दिया। यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी जिसने ILO को वैश्विक मान्यता दिलाई।

5. **COVID-19 और वैश्विक संकट में श्रमिक सहायता**

कोविड-19 महामारी के दौरान, ILO ने एक सक्रिय भूमिका निभाई। उसने विभिन्न देशों को **नीति मार्गदर्शन**, **आपातकालीन वित्तीय सहायता**, और **सुरक्षित कार्यस्थल व्यवस्था** के लिए दिशा-निर्देश प्रदान किए। ILO ने वैश्विक स्तर पर श्रमिकों की सुरक्षा, बेरोजगारी की रोकथाम, और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को बढ़ावा दिया। इसने संकट काल में एक **वैश्विक मार्गदर्शक संस्था** के रूप में कार्य किया।

6. **सामाजिक संवाद और न्याय को बढ़ावा**

ILO ने श्रमिकों के लिए **सामाजिक संवाद**, **सामूहिक सौदेबाजी**, और **श्रमिक संगठनों की स्वतंत्रता** को वैश्विक स्तर पर मजबूत किया। इसके परिणामस्वरूप दुनिया भर में श्रमिक अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हुए और उनके हितों की रक्षा सशक्त रूप से हो सकी।

निष्कर्ष:

ILO की उपलब्धियाँ वैश्विक श्रम नीति और कार्यस्थल सुधारों में मील का पत्थर रही हैं। चाहे वह **श्रम मानकों का निर्माण**, **बाल श्रम उन्मूलन**, **त्रिपक्षीय संवाद**, या **महामारी के समय श्रमिक सहायता** हो, ILO ने निरंतर **श्रमिकों के जीवन को बेहतर बनाने** में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये उपलब्धियाँ न केवल संगठन की प्रभावशीलता को दर्शाती हैं, बल्कि वैश्विक स्तर पर **समानता, सुरक्षा और गरिमा के साथ कार्य करने के अधिकार** को भी सशक्त बनाती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन और भारत (I. L. O. and India)

भारत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का आरम्भ से सदस्य रहा है और इसे इस संगठन की सदस्यता से बहुत लाभ हुआ है। एक प्रमुख व्यावसायिक देश होने के कारण भारत को श्रम संगठन की कार्यकारिणी (प्रबन्ध समिति) की स्थायी सदस्यता प्राप्त है। भारत श्रम संगठन द्वारा निर्मित व्यावसायिक समितियों में से प्रायः सभी का सदस्य है। भारत अनेक समझौतों का अनुसमर्थन कर चुका है जिनमें से मुख्य निम्नलिखित विषयों में सम्बन्धित हैं-जबरन कराया गया श्रम (Forced Labour), काम करने की न्यूनतम आयु, साप्ताहिक विश्राम, काम करने के अधिकतम घण्टे, संघ बनाने का अधिकार, श्रमिकों को दी जाने वाली क्षति-पूर्ति, दुर्घटनाओं से सुरक्षा तथा रात को काम करने की शर्तें इत्यादि सन् 1962 में भारत में जो त्रि-पक्षीय अथवा त्रि-दलीय सम्मेलन हुआ था वह श्रम संगठन के इस सिद्धान्त पर आधारित था कि देश में औद्योगिक प्रगति और स्थिरता के लिए यह आवश्यक है कि सरकार, श्रमिक और मिल-मालिक एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझें और एक जुट होकर कार्य करें। श्रम संगठन के विविध कार्यों और कार्यक्रम के कारण भारत का मजदूर वर्ग जागृत हो गया है और भारत की सरकार श्रमिक वर्ग की आर्थिक दशा सुधारने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। सन् 1967 के अन्त तक भारत सरकार 128 समझौता में से 30 समझौतों का अनुसमर्थन कर चुकी थी। 12 दिसम्बर, 1996 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने खतरनाक उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों की प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। इसके परिणामस्वरूप खतरनाक उद्योगों में बाल मजदूर अब काम नहीं करते। जिन समझौतों को भारत ने समर्थन नहीं भी किया उसका अभिप्राय यह नहीं है कि भारत उनके विरुद्ध है। इसके सम्बन्ध में भारत की अपनी कुछ कठिनाइयाँ हैं।

UNESCO

यूनेस्को: स्थापना, उद्देश्य व लक्ष्य, कार्य और उपलब्धियाँ

1. यूनेस्को की स्थापना

संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) की स्थापना **16 नवम्बर 1945** को द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुई थी। इसकी स्थापना इस विचार पर आधारित थी कि शांति केवल राजनीतिक और आर्थिक समझौतों से नहीं लाई जा सकती, बल्कि इसे मनुष्यों के बौद्धिक और नैतिक एकजुटता के आधार पर निर्मित किया जाना चाहिए। इसकी नींव **लंदन सम्मेलन** में रखी गई थी, जहाँ 44 देशों के प्रतिनिधियों ने यूनेस्को के संविधान पर हस्ताक्षर किए। यह संविधान 4 नवम्बर 1946 को 20 देशों द्वारा अनुमोदन के बाद प्रभाव में आया। यूनेस्को का मुख्यालय **पेरिस, फ्रांस** में स्थित है और यह **संयुक्त राष्ट्र (UN)** की एक विशेष एजेंसी है।

यूनेस्को का गठन मानव गरिमा, सतत विकास और अंतर-सांस्कृतिक संवाद को बढ़ावा देने के लिए वैश्विक प्रतिबद्धता का

प्रतीक था।

2. यूनेस्को के उद्देश्य व लक्ष्य

यूनेस्को का आदर्श वाक्य है: **"मनुष्यों के मन में शांति का निर्माण।"** इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति और संचार के माध्यम से देशों के बीच सहयोग को बढ़ावा देकर शांति और सतत विकास को सुनिश्चित करना है।

यूनेस्को के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

* **सभी के लिए शिक्षा को बढ़ावा देना**: सभी को समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना और निरक्षरता को समाप्त करना।

* **विज्ञान और प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहित करना**: अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा देना तथा पर्यावरणीय स्थिरता के लिए विज्ञान का उपयोग करना।

* **सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण करना**: विश्व की सांस्कृतिक और प्राकृतिक विरासत को सुरक्षित रखना और सांस्कृतिक विविधता को बनाए रखना।

* **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बढ़ावा देना**: मीडिया की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लोकतंत्र और शांति के लिए आवश्यक मानना।

* **सतत विकास को बढ़ावा देना**: सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के साथ अपने कार्यों को जोड़ते हुए एक समावेशी और टिकाऊ भविष्य की दिशा में काम करना।

3. यूनेस्को के कार्य

यूनेस्को निम्नलिखित तरीकों से अपने उद्देश्यों को पूरा करता है:

* **अंतर्राष्ट्रीय मानक निर्माण और सहयोग**: यह महत्वपूर्ण विषयों पर अंतरराष्ट्रीय संधियाँ, अनुशंसाएँ और मानदंड तैयार करता है।

* **क्षमता निर्माण और तकनीकी सहायता**: सदस्य देशों को नीति निर्माण, प्रशिक्षण और तकनीकी सहायता प्रदान करता है।

* **निगरानी और रिपोर्टिंग**: वैश्विक शिक्षा निगरानी रिपोर्ट जैसे दस्तावेजों के माध्यम से प्रगति की निगरानी करता है।

* **विश्व धरोहर का संरक्षण**: **विश्व धरोहर केंद्र** के माध्यम से वैश्विक सांस्कृतिक और प्राकृतिक धरोहर स्थलों की सुरक्षा करता है।

* **वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देना**: "मानव और जीवमंडल कार्यक्रम" जैसे वैज्ञानिक कार्यक्रमों के माध्यम से नवाचार और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देता है।

* **सूचना और मीडिया साक्षरता**: संघर्ष क्षेत्रों और विकासशील देशों में स्वतंत्र मीडिया और सूचना तक पहुंच को बढ़ावा देता है।

4. यूनेस्को की उपलब्धियाँ

यूनेस्को ने कई क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं:

* **विश्व धरोहर स्थल**: अब तक **1,100 से अधिक स्थलों** को विश्व धरोहर घोषित कर संरक्षित किया गया है जैसे चीन की ग्रेट वॉल, माचू पिचू, और मिस्र के पिरामिड।

* **सभी के लिए शिक्षा अभियान**: **एजुकेशन फॉर ऑल (EFA)** अभियान के तहत शिक्षा के क्षेत्र में बड़े सुधार हुए हैं, विशेषकर बालिकाओं और वंचित वर्गों के लिए।

* **सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा**: 2005 की **सांस्कृतिक विविधता संरक्षण संधि** के माध्यम से आदिवासी संस्कृतियों और भाषाओं को सुरक्षित रखा गया है।

* **विज्ञान और पर्यावरण**: **भू-विज्ञान कार्यक्रम** और **समुद्र विज्ञान आयोग** जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाओं पर अनुसंधान को बढ़ावा दिया।

* **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता**: **विश्व प्रेस स्वतंत्रता दिवस** जैसे अभियानों के माध्यम से पत्रकारों की सुरक्षा और मीडिया की स्वतंत्रता को सुनिश्चित किया।

* **डिजिटल साक्षरता**: यूनेस्को ने सूचना प्रौद्योगिकी तक समान पहुँच के लिए कार्य किया है जिससे डिजिटल डिवाइड को कम किया जा सके।

निष्कर्षत:, यूनेस्को ने शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति और संचार के क्षेत्र में वैश्विक सहयोग को बढ़ावा देकर एक शांतिपूर्ण, न्यायसंगत और सतत विश्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके कार्यों ने मानवाधिकार, सांस्कृतिक संरक्षण और वैज्ञानिक उन्नति में स्थायी प्रभाव छोड़ा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation)

उत्तर-संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशिष्ट अभिकरणों में विश्व स्वास्थ्य संगठन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस संगठन की नींव 19 जून, 1946 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् द्वारा न्यूयार्क में बुलाए गए एक सम्मेलन में पड़ी। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिए आयोजित इस सम्मेलन में 22 जुलाई, 1946 तक विचार किया गया और इसी समय उसने विश्व स्वास्थ्य संगठन के संविधान की रचना की। इस संविधान की रचना में 67 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस संगठन की स्थापना 7 अप्रैल, 1948 को हुई इस कारण से ही प्रतिवर्ष 7 अप्रैल का दिन पूरे विश्व में 'स्वास्थ्य दिवस' के रूप में मनाया जाता है। वर्तमान समय में इस संगठन की सदस्य संख्या 180 के लगभग है।

उद्देश्य (Aims)-विश्व स्वास्थ्य संगठन के संविधान की प्रस्तावना में संगठन के उद्देश्यों का वर्णन किया गया है। इसमें कहा गया है कि संगठन का उद्देश्य विश्व के सभी लोगों को उच्चतम सम्भव स्वास्थ्य स्तर की सुविधा दिलाना है। संगठन के संविधान में स्वास्थ्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- "स्वास्थ्य का अर्थ बीमारी या दुर्बलता का अभाव मात्र नहीं बल्कि शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दृष्टि से पूर्ण खुशहाली की दशा है।"

विश्व स्वास्थ्य संगठन के उद्देश्य एवं कार्य (Aims and Functions of W.H.O.)- विश्व स्वास्थ्य संगठन की प्रस्तावना में उसके उद्देश्यों का वर्णन किया गया है। प्रस्तावना में यह कहा गया है कि 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' का उद्देश्य विश्व की जनता द्वारा स्वास्थ्य की उच्चतम संभव' दशा प्राप्त करना है। प्रस्तावना में यह भी कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य का यह मौलिक अधिकार है कि उसे उच्चतम स्वास्थ्य स्तर की सुविधा मिलनी चाहिए। अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन निम्नलिखित कार्यों को करता है-

(1) अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों को संचालित और समन्वित करने वाली संस्था के रूप में कार्य करना।

(2)सरकारों के अनुरोध पर उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं का शक्तिशाली बनाने में सहायता, प्रदान करना।

(3) स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी व्यवसायों के लिए उच्चतर शिक्षा तथा प्रशिक्षण को प्रोत्साहन देना। संगठन द्वारा प्रतिवर्ष भारी संख्या में छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं ताकि डॉक्टर और नर्सें विदेशों में जाकर अनुसन्धान तथा अध्ययन कर सकें।

(4) महामारियों तथा बीमारियों के उन्मूलन के कार्यक्रम को प्रोत्साहित करना। संगठन द्वारा पोलियो तथा इन्फ्लूएंजा एवं बाल-कल्याण कार्यों को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

(5) खाद्य पदार्थों, दवाइयों तथा अन्य इसी प्रकार की वस्तुओं के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय मानक (Standards) निश्चित करना।

(6) औषधियों के अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्ड निर्धारित करना।

(7) बीमारियों के अन्तर्राष्ट्रीय नामों को निर्धारण करना।

(8) स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रकाशन छापकर पूर्ण विश्व में बाँटना हैजा, चेचक तथा प्लेग आदि महामारियों के बारे में समस्त राष्ट्रों को सूचना देना।

(9) लोगों की काम करने की दशाओं में सुधार करना।

(10) आकस्मिक चोटों को रोकने का प्रयत्न करना।

(11) बीमारियों के निदान-सम्बन्धी (Diagnosis) कार्यों का मानकीकरण (Standardisation) करना।

(12) विभिन्न देशों के स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों में समन्वय स्थापित करना।

(13) डॉक्टरों तथा नर्सों को शिक्षा तथा अनुसन्धान के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना।

(14) स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें छपवाकर पूरे विश्व में बाँटना।

(15) क्षय रोग तथा एड्स (AIDS) जैसी खतरनाक बीमारियों की रोकथाम के लिए प्रयास करना।

(16) स्वास्थ्य सम्बन्धी सम्मेलनों का आयोजन करना।

(17) अणुशक्ति के स्वास्थ्य से सम्बन्धित पहलुओं का अध्ययन करना।

(18) हैजा (Cholera), चेचक (Small pox), तथा प्लेग (Plague) आदि महामारियों के सम्बन्ध में सूचना प्रसारित करना।

(19) मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्य करना।

(20) लोगों के आहार, निवास तथा सफाई के कार्यों में सुधार के लिए प्रोत्साहन देना और स्वास्थ्य के अनुरूप वातावरण तैयार करने में सहयोग देना।

(21) सयुंक्त राष्ट्रसंघ और इसके विशिष्ट अंगों तथा अन्य स्वास्थ्य सम्बन्धी संस्थाओं में सहयोग तथा समन्वय करना।

UNICEF

****यूनिसेफ: स्थापना, उद्देश्य और सिद्धांत, कार्य और उपलब्धियाँ****

संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय बाल आपातकालीन कोष (UNICEF) की स्थापना **11 दिसंबर 1946** को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा की गई थी। इसका प्रारंभिक उद्देश्य द्वितीय विश्व युद्ध से प्रभावित देशों में बच्चों और माताओं को आपातकालीन खाद्य और स्वास्थ्य सहायता प्रदान करना था। शुरुआत में यह एक अस्थायी राहत एजेंसी थी, लेकिन समय के

साथ इसका कार्यक्षेत्र विस्तृत हुआ और **1953** में इसे संयुक्त राष्ट्र प्रणाली का एक स्थायी अंग बना दिया गया। उस समय इसके नाम से "Emergency" शब्द हटा दिया गया, लेकिन **UNICEF** संक्षेप नाम बना रहा।

****यूनिसेफ के उद्देश्य और सिद्धांत****

UNICEF का मुख्य उद्देश्य **हर बच्चे के अधिकारों और कल्याण को बढ़ावा देना और उनकी रक्षा करना** है, विशेष रूप से उन बच्चों के लिए जो सबसे कमजोर और वंचित हैं। इसका मिशन 1989 में पारित **बाल अधिकारों पर कन्वेंशन** पर आधारित है, जो बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा, पोषण और आश्रय के अधिकारों को परिभाषित करता है।

UNICEF निम्नलिखित प्रमुख सिद्धांतों पर कार्य करता है:

1. **भेदभाव रहित नीति**: हर बच्चे को, उसकी जाति, लिंग, राष्ट्रीयता या पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना, समान अधिकार प्राप्त हैं।

2. **बच्चे के सर्वोत्तम हित**: बच्चों से संबंधित सभी कार्यों में उनके सर्वोत्तम हित को प्राथमिकता दी जाती है।

3. **जीवन और विकास का अधिकार**: हर बच्चे को जीने का अधिकार है और सरकारों का कर्तव्य है कि वे उनके पूर्ण विकास को सुनिश्चित करें।

4. **बच्चे की राय का सम्मान**: बच्चों को अपने विचार स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने का अधिकार है।

****यूनिसेफ के कार्य****

UNICEF विभिन्न क्षेत्रों में बच्चों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए कार्य करता है:

1. **स्वास्थ्य और पोषण**: टीकाकरण, पोषण कार्यक्रम और मातृ स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से बच्चों की सेहत में सुधार करता है।

2. **शिक्षा**: सभी बच्चों, विशेषकर लड़कियों और वंचित वर्गों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को बढ़ावा देता है।

3. **बाल संरक्षण**: बच्चों को हिंसा, शोषण, बाल श्रम और तस्करी से बचाता है।

4. **जल, स्वच्छता और साफ-सफाई (WASH)**: स्वच्छ पेयजल, शौचालय और स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध कराता है।

5. **आपातकालीन सहायता**: आपदा या युद्ध के समय जीवन रक्षक सामग्री, खाद्य, दवा और मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान करता है।

6. **नीति समर्थन और जागरूकता**: सरकारों के साथ मिलकर बाल-अधिकारों से जुड़ी नीतियाँ और कानून बनाने में सहयोग करता है।

****यूनिसेफ की उपलब्धियाँ****

* यूनिसेफ ने **चेचक उन्मूलन** और **पोलियो की समाप्ति के करीब पहुँचने** में प्रमुख भूमिका निभाई।

* विकासशील देशों में **बाल मृत्यु दर** में भारी कमी लाने में सहायता की।

* **सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा**, विशेष रूप से लड़कियों के लिए, को बढ़ावा दिया।

* **2004 की सुनामी**, **सीरियाई शरणार्थी संकट**, और **कोविड-19 महामारी** जैसे आपातकालीन हालात में

प्रभावी राहत प्रदान की।

यूनिसेफ के कार्यों की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सराहना की गई और इसे **1965 में नोबेल शांति पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। आज UNICEF **190 से अधिक देशों और क्षेत्रों** में काम कर रहा है ताकि हर बच्चा सुरक्षित, स्वस्थ और शिक्षित जीवन जी सके।